प्रकाशक,

गोकुलदास धूत,

नवयुग साहित्य सदन, इन्दौर

प्रथमबार : १९

मूल्य

डेढ रुपया

मुद्रक,

अमरचन्द्र,

राजहंस प्रेस, देहली

विषय-सूची

पहला भाग

प्रस्तावना

आचार्य अग्रवाल के इन पन्नों के लिए शायद 'गाधीवादी शासन-विधान' नाम मौजू नहीं है। सरल और सक्षिप्त नाम के तौर पर वह मानने लायक हो सकता है। आचार्य अग्रवाल का मेरे लेखो का अध्ययन ही इस पुस्तिका के ढाचे का आधार है। कई वर्षों से वह उनकी व्याख्या करते रहे हैं। और क्योंकि उन्हे इस बात का बड़ा खयाल रहता है कि उस व्याख्या में किसी तरह का कोई उलटा-पलटा या गलती न हो जाय, मेरे देखे विना वह कोई चीज नहीं छपवाते। इसमे नफा और नुकसान दोनो ही हैं। नफा तो साफ ही है। नुकसान यह है कि किसी खास लेख के वारे मे पाठक कहीं यह गलत खयाल न बना बैठे कि उसकी हरएक तफ़सील मेरे खयाल के मुताबिक है। इसलिए मै आगाह कर देना चाहता हू कि वह ऐसी गलती न करे। इन पन्नों में जो कुछ भी निकल रहा है अगर उसके हरेक शब्द या लफ्ज से अपना इत्तिफाक जाहिर करना होता, तो मै उस चीज को खुद ही लिखता। हालाकि अपने दूसरे कामों के साथ-साथ मे जितना ध्यान इस तरफ दे सकता था, देकर, मैंने दो बार इस विधान को पढने की कोशिश की है, फिर भी इसके हरेक खयाल और लफ्ज को जाचने का काम मैं नहीं कर सका हू। और न औचित्य और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की मेरी भावना ही इस तरह की ज्यादती की मुझे इजाजत देती। इसलिए मैं जो कुछ कह सकता हू इतना ही कि सही-सही खयालात जाहिर करने के लिए लेखक जितनी सावधानी रख सकता था, उतनी उसने रक्खी है, इस बात के पुस्तिका में काफी प्रमाण हैं। मै जिस बात को पसन्द करता होऊँगा उसके खिलाफ इसमें मुझे कोई बात नहीं मालूम हुई।

मेरे विचार से जो परिवर्तन या तब्दीलियां इसमे ज़रूरी थीं, लेखक ने खुशी से वे मजूर कर लीं।

'विधान' शब्द से पाठक को यह गलत खयाल न बना लेना चाहिए कि लेखक ने इसमें सम्पूर्ण या मुकम्मिल विधान रखन का इज़हार किया हो। शुरू के पन्नों मे उन्होंने यह बिलकुल साफ़ कर दिया है कि उन्होंने मेरे खयाल के मुताबिक कैसा विधान होना चाहिए यह बताने वाली एक व्यापक रूप-रेखा ही इसमें दी है। हिन्दुस्तान के सामने विधान पेश करने के जो अनेक प्रयत्न हो रहे हैं, उसमें आचार्य अग्रवाल के प्रयत्न को मैं एक विचार-पूर्ण योग समझता हू। उनके इस प्रयत्न की विशेषता इस तथ्य मे है कि वक्त की कमी की वजह से जो मैं नहीं कर सका वह उन्होंने किया है।

कलकत्ता जाते हुए
रेल पर
३० नवम्बर, १९४५

पहला भाग

: १ :

प्रास्ताविक

निःसन्देह संयुक्त राष्ट्रों ने विश्वव्यापी युद्ध में विजय तो हासिल कर ली। जापान और जर्मनी को बिला शर्त आत्म-समर्पण के लिए मजबूर करके उन्हें अपने कदमों में भी झुका लिया। पर अभी यह सिद्ध कर के दिखा देना बाकी है कि संयुक्त राष्ट्रों ने विश्वशान्ति भी हासिल कर ली है। क्योंकि युद्ध-समाप्ति के पहले-पहले ही अटलांटिक चार्टर निर्लज्जता के साथ दफना दिया गया था। एक नये नाम से पुराना "राष्ट्र-संघ" फिर खड़ा कर दिया गया और इन सब के ऊपर है पोट्सडम घोषणा, जिसके सामने वर्साय की सन्धि भी फीकी पड़ जाती है। ये सब शुभ शकुन कोई आशा नहीं दिला सकते। जैसा कि वेन्डल विल्की ने कहा है, "अगर लड़ाई के दरमियान हम कोई

ऑफ थिंग्स टु कम" में स्पष्ट दर्शन कर रहे हैं कि एक बार ब्रिटेन अपनी मजबूती दिखाने के लिए हाथ पैर पटकेगा और उसके बाद उसकी भारत पर की पकड़ एकदम ढीली पड़ जायगी,—छूट जायगी।" मुझे तो यह पूर्ण विश्वास है कि यह छटपटाहट जो पिछले तीन वर्षों में साफ साफ प्रकट हो गई है, अब खतम होने को ही है। आज के इस अंधकार और निराशा का अन्त होगा और हम बहुत जल्दी सुनहली प्रभात का उदय देखेंगे। हिन्दुस्तान जैसे महान प्राचीन एशियाई देश की स्वाधीनता के बगैर जगत में शान्ति की स्थापना असम्भव है। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और प्रेमभाव के मार्ग में हिन्दुस्तान की गुलामी हमेशा एक जबरदस्त और बढ़ता हुआ खतरा ही रहेगी। इसलिए ससार के हित की दृष्टि से भी हिन्दुस्तान के स्वतन्त्रता के प्रयत्नों को रोकना अच्छा नहीं है'।

सवाल उठता है, आजाद हिन्दुस्तान का शासन-विधान कैसा होगा? क्या हम, स्विट्जरलैंड, अमेरिका के सयुक्त राष्ट्र या रूस जैसे किसी पश्चिमी राष्ट्र के विधानों की नकल करेंगे? या हम भारतवर्ष की विशेषता, संस्कृति और परम्परा के आधार पर किसी स्वदेशी-शासन-विधान का विकास करेंगे? मुझे लगता है, यह सवाल बड़ा महत्त्वपूर्ण है और इसके लिए राजनैतिक सत्ता सचमुच प्रत्यक्ष रूप से हमारे हाथों में आवे तब तक ठहरना ठीक नही होगा। बल्कि, इसका जवाब हमें आज और अभी दे देना चाहिए।

हिन्दुस्तान सचमुच एक बहुत पुराना देश है। अगर उसके पुराने शासनिक विकास का अध्ययन किया जाय तो पता चलेगा कि ईसा के हजारों वर्ष पहले वह लगभग सभी प्रकार के राजनैतिक संगठनों का अनुभव ले चुका है। ऐसे समय—जब कि यूरोप और नई दुनिया ने सभ्यता का प्रकाश तक नही देखा था हिन्दुस्तान ने राजसत्ता, एकतन्त्र सरदार तन्त्र, प्रातिनिधिक शासन, सपूर्ण जनतन्त्र, और अराजकता

१ ए वीक विथ गांधी—लुई फिशर, पृष्ठ ५६

आदि सब प्रकार के शासनों का अनुभव ले लिया था। 'हिन्दू पोलिटी' में श्री काशीप्रसाद जायसवाल लिखते हैं कि भौज्य, स्वाराज्य, वैराज्य, राष्ट्रिक, द्वैराज्य, और अराजक प्रकार के शासन हिन्दुस्तान में थे। इनमें से कुछ प्रकार तो शायद अब तक किसी देश ने नहीं आजमाये हैं। इसलिए हम मान सकते हैं कि हिन्दुस्तान शासन-विकास की एक बहुत पुरानी विज्ञानशाला—लेबोरेटरी है। उसके लिए पश्चिम के शासन-विधानों का जो कि अभी साँचे में ढल ही रहे हैं, एक मिश्रण तैयार करना न केवल उसका अपमान होगा, बल्कि इससे हम अपने समाज-विज्ञान-सम्बन्धी सम्पूर्ण अज्ञान को ही प्रकट करेंगे। क्योंकि शासन विधान एक पौधे के समान विकासशील वस्तु है। किसी देश पर उसकी अपनी प्रतिभा और विशेषता के प्रतिकूल एकदम परकीय शासन-विधान को लादना एकदम अवैज्ञानिक बात होगी। शासन की पद्धतियाँ पौधों की भाँति एक जगह से उखाड़ कर दूसरी जगह नहीं लगाई जा सकतीं—इस तरह उन्हें लगाना भी नहीं चाहिए। सर जान मारियट के शब्दों में कहें तो "वे व्यापार की वस्तु भी नहीं हैं जिनका दूसरी जगह निकास किया जा सकता हो।"[1] हर देश की अपनी स्वतन्त्र अनन्य साधारण संस्कृति और सभ्यता होती है। वही उसकी आत्मा है। राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक हिस्से में उसकी इस आत्मा की रक्षा और विकास-साधन होना चाहिए। सम्पूर्ण और स्वाभाविक विविधता ही जीवन और आकारहीन नकली समानता मृत्यु है।

असी हो गया। अब सही भावना में हम अपनी भारतीय संस्कृति और सस्थाओं पर गर्व करना सीखे।

मै एक कदम और आगे जाऊंगा। बडी सावधानी के साथ भारत-वर्ष ने विकेन्द्रित जनतन्त्री पद्धति का विकास किया था और ग्रामीण, जनतन्त्र के रूप में सदियों तक उसकी रक्षा की। 'यह किसी जातीय साम्यवाद का स्मारक या अवशेष नहीं, बल्कि परिपक्क चिन्तन और पूरी सावधानी के साथ किये गये प्रयोगों का फल था। अपनी असंख्य ग्राम-संस्थाओ के रूप में हमारे देश ने जिस स्वायत्त-शासन का विकास किया था, उसने सदियों तक असख्य राजनैतिक तूफानों का मुकाबला किया। आज भी एक आदर्श जनतन्त्री शासन के रूप मे सगठित हो जाने की क्षमता उसके अन्दर विद्यमान है। मेरा मतलब यह नहीं कि स्थानीय शासन की पुरानी पद्धति को हम पुनः ज्यों-की-त्यों शुरू कर दें। हमारे नागरिक जीवन की मौजूदा हालत के अनुकूल बनाने के लिए हमे उसमें अवश्य ही कई परिवर्तन करने होंगे।

बीसवीं सदी में हिन्दुस्तान में शासन-विधान बनाने के जो प्रयत्न हुए हैं उनपर हम जरा एक सरसरी नजर डाले। सन् १६०६, १६१६ और १६३५ मे ब्रिटिश सरकार ने जो वैधानिक सुधार जारी किये उनका जिक्र मैं नही करूंगा। अंग्रेज विधान-शास्त्रियों का यह निश्चित मत है कि विधानों को बाहर से नहीं लाया जा सकता। इसके बावजूद ये विधान इङ्गलैड से भारत में भेजे गये। इस देश में जो नवचेतना जागी थी उसके साथ इनका कोई सम्बन्ध नहीं था। महात्मा गान्धी पहले नेता हैं, जिन्होने अपनी स्वदेशी, संस्कृति और सभ्यता के विकास की तरफ ध्यान दिया। सन् १६०८ में उन्होंने 'हिन्द-स्वराज्य' लिखा था। भारत का भावी-शासन विधान कैसे हो इसके आधार-भूत आदर्शों और सिद्धान्तो का वर्णन इस पुस्तक में है। इसके बाद हम सन् १६१६ की कांग्रेस-लीग योजना को ले। किसी खास वैधानिक सिद्धान्त पर नहीं, बल्कि ब्रिटिश पार्लमेण्टरी पद्धति पर उसकी रचना की गई थी। इस संयुक्त योजना में

सच्चे दिल से एक ऐसी वस्तु बनाने का यत्न किया गया था जो हिन्दुओ और मुसलमानों के लिए भी स्वीकार्य हो। देशबन्धु चित्तरजन दास और डॉ० भगवान्दास ने सन् १९२२ की गया कांग्रेस के बाद 'स्वराज्य की एक रूपरेखा' बनाई थी। परन्तु देश के अनेक प्रमुख नेताओं की सलाह से सन् १९२४-२५ मे 'दि कामनवेल्थ ऑफ इण्डिया बिल' देश के सामने रखकर श्रीमती बेसेन्ट ने एक बड़ा भारी और सच्चा बुनियादी काम किया। उनकी कल्पना तो यही थी कि भारतवर्ष ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर रहकर ही स्वराज्य का उपभोग करे। परन्तु उन्होंने हमारी पुरानी ग्राम-पचायत प्रथा के आदर्श को ही ऊचा उठाकर उसे भारत के भावी-शासन विधान का आधार बनाया था। सन् १९२८ मे सर्वदल सम्मेलन की रिपोर्ट प्रकाशित हुई जो नेहरू-कमिटी रिपोर्ट के नाम से प्रसिद्ध है। सन् १९३९ में महात्मा गान्धी के मार्ग-दर्शन मे औंध के लिए जो शासन विधान बनाया गया वह शासन-विधान के विकास मे बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। सम्पूर्णतया जनतन्त्रात्मक पद्धति पर राज्य मे उसने पचायती राज की स्थापना कर दी। विधान-निर्माण का सबसे अन्तिम प्रयत्न उस समझौता समिति की रिपोर्ट है, जिसके सभापति सर तेज बहादुर सप्रू थे।

इसकी प्रायः हर तफसील पर मैंने उनसे चर्चा की है, और उनके विचारों को सही तौर पर पेश करने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया है।

फिर भी मेरा दावा यह नहीं कि इस पुस्तिका में शासन-विधान का ऐसा सर्वाङ्गपूर्ण ढाचा पेश किया गया है, जिसे देश मे केवल जारी करने भर की देर हो। नहीं, इसमें तो केवल उन बुनियादी सिद्धान्तो और उद्देश्यो को पेश किया गया है जिनको स्वतन्त्र भारत के भावी-शासन-विधान में स्वीकृत किया जाना चाहिए। मै जोर के साथ कह दूं कि 'विकेन्द्रित जनतन्त्र' के ये आदर्श केवल हवाई सपने नहीं हैं। वे पूर्णतया व्यावहारिक हैं और उनपर अमल हो सकता है। आम चुनावों के बाद विधान निर्मातृ सभा के सामने स्वतन्त्र भारत के लिए एक माकूल और योग्य विधान बनाने में मुश्किल सवाल खड़ा होगा। अगर इस मौके पर यह निबन्ध हमारे नेताओं और जनता का ध्यान अपने देश की परम्परा के अनुकूल स्वदेशी विधान का निर्माण करने की जरूरत की तरफ आकर्षित कर सका तो मैं मान लूंगा कि मेरा यह परिश्रम पूर्णतया सफल हो गया।

: २ :

बुनियादी सिद्धान्त

मेरा यह इरादा हरगिज नहीं कि आदर्श राजनैतिक सगठन के मूलभूत सिद्धान्तों पर मैं कोई विस्तृत निबन्ध लिखूं। फिर भी एक चिरस्थायी राजनैतिक सगठन के लिए आवश्यक कुछ सिद्धान्तों की चर्चा यहा कर लेना जरूरी है। इन बुनियादी कल्पनाओ को जबतक साफतौर पर नहीं समझ लिया जायगा किसी भी विधान का निर्माण निरर्थक होगा।

सबसे पहले हम साफ तौर पर यह समझ ले कि कोई एक विधान तमाम देशों के लिए और सदा सर्वकाल के लिए सर्वोत्तम नहीं हो सकता। प्रत्येक देश की पूर्व परम्परा और वर्तमान परिस्थिति को ध्यान

मे रखकर ही शासन के रूपो का निर्माण होना चाहिए। वह विधान सर्वोत्तम है जो अमुक समय में, अमुक देश में उन तमाम उद्देश्यो को पूर्णतया सफल करता हो जिसके लिए समस्त सरकारे बनाई जाती हैं।[1] इस दृष्टिकोण पर जोर देने वाला सबसे पहला विचारक शायद अरस्तू था। राज्य का अस्तित्व ही इसलिए है कि जो मनुष्य को—जितनी उसमें क्षमता हो—अच्छे से अच्छा जीवन बनाने का मौका दे। साथ ही मनुष्य तभी अपना जीवन सबसे अच्छा बना सकते हैं जबकि प्राप्त परिस्थिति मे उन्हें अच्छे-से-अच्छे प्रकार का शासन उपलब्ध हो।[2] इसलिए हम किसी राज्य की खासियत या विशेषता को देखकर उसे अच्छा या बुरा नहीं कहें, बल्कि इसका अन्दाजा हम उसके नागरिकों के प्रत्यक्ष जीवन की अच्छाई-बुराई के मान को देखकर लगावे।[3] इसलिए जुदा-जुदा राज्यों के शासन का लक्ष्य तो मूलतः एक ही होगा परन्तु स्थानीय परिस्थिति के अनुसार उनके रूप निश्चय ही भिन्न-भिन्न होगे।

राज्य का लक्ष्य

पर राज्य का लक्ष्य क्या हो? सचमुच यह एक ऐसा सवाल है जिसके आस-पास पुराने जमाने से लेकर आजतक राजनैतिक विचारधारायें लगातार चक्कर काटती रही हैं। यूनान के निवासियों के लिए तो राज्य ही जीवन का सबसे श्रेष्ठ तथ्य था और जिस प्रकार तमाम नदियां बह कर समुद्र की तरफ जाती हैं, मनुष्य की सारी क्रियाये और कोशिशें उसीकी तरफ और उसीमे प्रवाहित होती थीं।[4] अथेन्स के निवासियो के लिए सबसे बड़ी गौरव की वस्तु उनका नागरिकत्त्व था। नागरिकत्व के सिद्धान्तों के अन्दर उनके लिए नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र और राजनीति भी समाविष्ट थी।[5] शहर के मानी थे सामाजिक—

१ डिक्टेटरशिप एण्ड डेमोक्रेसी पृ० २१७ २ अरिस्टोटल्स 'पोलिटिक्स'
३ फिलोसफी आफ अवर टाइम्स—प्रो० जोड पृ० ३२१
४ 'प्रिंसिपल ओफ पोलिटिकल साइंस'—गिलक्राइस्ट पृ० ४६०
५ 'ए हिस्ट्री ओफ पोलिटिकल थियरी'—प्रो० सेबाइन पृ० १३

'सम्मिलित जीवन'। फलतः यूनान के तमाम राजनैतिक सिद्धान्तो की जड़ में इस "सम्मिलित जीवन की शान्ति और सुख" को हम पाते हैं। अफलातूं के लिए राज्य एक विश्व था, जिसमें व्यक्ति अपना स्थान ढूंढ कर अपने योग्य कर्तव्यों को अदा कर सकता था। अरस्तू नैतिकता को मानता था। राज्य का आधारभूत मुख्य सिद्धान्त समान अधिकारवादी व्यक्तियों की इस सस्था का लक्ष्य "अच्छे-से-अच्छे जीवन" की सिद्धि था। रूमियों ने राज्य का लक्ष्य क्या हो इस पर बहुत ध्यान नहीं दिया। उनकी शक्तिया ज्यादातर साम्राज्य के विस्तार में ही लगीं। मध्ययुगीन ईसाई पादरी वर्ग के लेखक साधारणतया राज्य को ईसाई धर्म (क्रिश्चियानिटी) की रक्षा के लिए ईश्वर का एक औजार मानते थे। हॉब्स कहता कि राज्य का काम मुल्क में व्यवस्था कायम रखना है जिससे रिआया की सम्पत्ति की रक्षा हो। लॉक की नजरों मे शासन का उद्देश्य जान, माल और आजादी की रक्षा था। रूसो राज्य को आम जनता की इच्छा की पूर्ति के लिए मजूर किया गया एक सामाजिक इकरारनामा मानतो था। हेगेल ने यूनान के इस सिद्धान्त को पुनः जीवित कर दिया कि राज्य ही सबसे बड़ा तथ्य है। उसने लिखा है कि "राज्य का अस्तित्व ससार में प्रत्यक्ष ईश्वर की सत्ता का प्रमाण है। पृथ्वी पर वही सब से बड़ी सत्ता है। साध्य, साधन सब कुछ वही है" बेन्थम ने यह प्रतिपादन किया है कि अधिक से अधिक जनता का सर्वाधिक हित-साधन के लिए राज्य का अस्तित्व होना चाहिए। हर्बर्ट स्पेन्सर ने राज्य को पारस्परिक विश्वास के लिए खड़ी की गई एक कम्पनी कहा है, जिसका काम था सबकी सम्पत्ति की सम्मिलित रूप से रक्षा करना। जान स्टुअर्ट मिल ने बडे जोरो के साथ प्रतिपादन किया है कि व्यक्तियों की स्वतन्त्रता की रक्षा करना राज्य का पवित्र कर्त्तव्य है। मार्क्स की अपेक्षा यह रही है कि वर्गहीन समाज की स्थापना करने के बाद राज्य सस्था अपने आप खतम हो जायगी। हमारे अपने जमाने में प्रो० लास्की राज्य को सामाजिक जीवन की

समृद्धि के लिए निर्मित बन्धुभाव से खड़ा किया गया संघ मानते हैं[1]। बर्नार्ड शा मानते हैं कि 'राज्य का लक्ष्य किसी एक वर्ग का नहीं बल्कि समस्त जनता का अधिक-से-अधिक हित-साधन हो।' वेल्स चाहते हैं कि सारा ससार एक राज्य हो। मनुष्य के अधिकारों की नये सिरे से परिभाषा की जाय और उसके आधार पर नये कानून बनायेजाय जो मनुष्य-मात्र के लिए लागू हों और उनके जरिये प्रत्येक मनुष्य की स्वतन्त्रता, स्वास्थ्य और सुख की रक्षा हो।[2]

भारत का राजनैतिक चिन्तन प्रधानतया उसके पुराने दो महाकाव्यो रामायण और महाभारत मे, मनुस्मृति मे, कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे और शुक्राचार्य के नीतिसार मे हमें मिलता है। रामायण में राम के आदर्श-राज्य का वर्णन है, जिसमें बताया गया है कि लोग सुखी, शान्ति-शील और समृद्ध थे। महाभारत के शान्तिपर्व म भीष्माचार्य राज्य के कर्तव्यो को गिनाते हुए कहते हैं कि राज्य का मुखिया नागरिकों का सरक्षक हो जिससे वे अपने-अपने धर्म अर्थात् कर्तव्यों का पालन करते हुए शान्ति और सुख पूर्वक धर्ममय जीवन बिता सके। कौटिल्य भी राज्य के आधार-भूत तत्त्वो का वर्णन करते हुए बताते हैं कि राज्य या राजा का सबसे पहला कर्तव्य प्रजा का हित साधन कर उसे सुखी रखना है। उनके सुख में वह अपना सुख माने और उनके भले मे अपना भला।[3] शुक्रनीति में राजा सब से पहले अपने प्रजाजनों का रक्षक और कल्याणकर्ता माना गया है। नागरिकों को वह इस प्रकार अपने अनुशासन में रक्खे कि जिससे सब अपने-अपने धर्म और वर्णाश्रम के कर्तव्यों का पालन करे और दूसरे के क्षेत्रों में कदम न रक्खे।

१ ग्रामर ग्राफ पोलिटिक्स पृ० २७
२ न्यू वर्ल्ड ऑर्डर पृ० १२२
३ अर्थशास्त्र पृ० ३८

राज्य-निष्ठा और व्यक्तिनिष्ठा

राज्य के उद्देश और कर्तव्यों के बारे में भारतीय और यूरोप के विचारकों ने जो कुछ कहा है उस सबका अगर हम ध्यान से अध्ययन करेंगे तो हमें दो बिलकुल स्पष्ट-विचार धारायें दिखाई देंगी। एक प्रकार के विचारक राज्य-संस्था को अधिक महत्त्व देते हैं। राज्य की सत्ता के आगे व्यक्ति की अपनी स्वतन्त्रता उनकी नजरों में गौण है। व्यक्ति को दबाकर वे राज्य का गौरव बढ़ाकर उसे देवतुल्य बना देते हैं। उनकी नजरों में राज्य का सबसे बड़ा कर्तव्य है व्यक्तियों को अपने अनुशासन में रखना। यहांतक कि मनुष्य शक्तिशाली राजनैतिक संगठन का एक पुर्जामात्र बन जाता है। यह विचार-धारा हमें अधिनायक या एक-तन्त्र की तरफ ले जाती है। दूसरे प्रकार के विचारकों की नजरों में प्रधान वस्तु व्यक्ति अर्थात् मनुष्य है। व्यक्ति की स्वतन्त्रता और विकास सबसे अधिक महत्त्व रखते हैं। वे मानते हैं कि राज्य का कर्तव्य व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करना है। मनुष्य उनकी नजरों मे साधन या औजार नहीं बल्कि साध्य और आराध्य है। काउण्ट कौडेनहोवेकालेरजी ने अपनी पुस्तक 'टोटेलिटेरियन स्टेट अगेन्स्ट मैन' (अर्थात् मानव विरोधी अधिनायक तन्त्र) में इन दो प्रकार की राजनैतिक विचार धाराओं को क्रमशः स्पार्टन और अथोनियन कहा है। स्पार्टन आदर्श अधिनायक तन्त्र पुरस्कर्ता है और अथोनियन आदर्श मनुष्य को सर्वेसर्वा मानता है। स्पार्टा मे मनुष्य का समस्त जीवन राज्य के लिए था। अथेन्स मे राज्य का अस्तित्व ही मानव की सेवा के लिए माना गया था। इन दो विचार-धाराओं को समाज-निष्ठ और व्यक्तिनिष्ठ आदर्शों के नाम से भी पुकारा जाता है। पर जैसा कि हमेशा हम देखते हैं सत्य इन दोनों के सुन्दर सामञ्जस्य मे है।

राज्य का काम और उद्देश तो व्यक्ति और राज्य के हितों का शान्तिपूर्ण समन्वय होना चाहिए। दूसरे शब्दों मे कहें तो स्वतन्त्रता और अनुशासन को भी हम समान महत्त्व दें। हमारा वजन इन

दोनों के मध्य में हो। राज्य का कर्तव्य है कि व्यक्ति और समाज के हितों के बीच सामंजस्य के लिए अनुकूलतायें निर्माण करे, उसे बढ़ावा दे और मजबूत करे। व्यक्ति राज्य के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करे और राज्य व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करे और उसे अपने व्यक्तित्व का पूर्णतया विकास करने में सहायता करे। प्रो० टॉनी इसी कल्पना को "फंक्शनल सोसायटी" (कर्तव्यशील समाज) इन शब्दों में प्रकट करते हैं। अर्थात समाज की सेवा के कार्यों से अधिकार अपने आप प्राप्त हो जाते हैं।' दूसरे शब्दों में व्यक्तियों के अधिकार और स्वतन्त्रता सापेक्ष, आनुषंगिक हों। इनकी हद होनी हो। व

बहुत से लोग हैं। उनकी और हमारी स्वतन्त्रता के बीच मे सामंजस्य स्थापित करना होगा।

पूर्ण व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का सिद्धान्त अब खतम हो चुका है। अब वह फिर उतना ज़ोर नही पकड सकता। किन्तु राज्य की वेदी पर मनुष्य के व्यक्तित्व की बलि देने की प्रवृत्ति अत्यन्त निन्दनीय है। काण्ट ने ठीक ही कहा है कि हर आदमी इस तरह बर्ताव करे कि उससे मनुष्यता का—चाहे वह हमारे अपने अन्दर हो या दूसरे के अन्दर हो—हित साधन हो। मनुष्यता साधन नही साध्य हो। उदाहरणार्थ राज्य के सैनिक संगठन के लिए व्यक्ति को दबाना या उसके साथ अन्याय करना मनुष्यता के प्रति पाप है। इस तरह समाज को एक सैनिक संगठन में जकड देने का अन्तिम परिणाम अधिनायक तन्त्र में होता है। इसमे शासक और शासित दोनों का पतन है। सर्वसत्ताधीश राज्य तो इस तरह व्यक्तियों को निरे शून्यवत बना देता है। फिर ऐसे सर्वसत्ताधीश तन्त्रों मे—चाहे वे फासिस्ट हो या समाजवादी अन्तिम सत्ता एक ही या इने-गिने कुछ आर्त मानवो के हाथों में पहुच जाती है, जो लाखों करोड़ों आदमियों की किस्मत के विधाता बन जाते हैं। परन्तु अगर मनुष्य की मनुष्यता की रक्षा करनी है तो इन आर्त मानवों से—चाहे वे कितने ही उदात्त और उच्चाशय हो—उसे बचाना ही होगा। जिस शासन में मनुष्यों की इस तरह मूर्ति पूजा होती है उसमे सभ्यता की कोई आशा नहीं हो सकती।[1] हिटलर और मुसोलिनी का चमत्कार भरा उत्थान और उतना ही आश्चर्यजनक पतन इस उन्मत्त अधिनायकत्व की व्यर्थता के ज्वलन्त प्रमाण हैं। हिटलर चाहे जिन्दा हो या मर गया हो आज तो वह केवल कथा-कहानियों का विषय बन गया है।

रूस का जनतन्त्र

रूस ने एक नये प्रकार के जनतन्त्र का विकास किया है जिसे मजूर और किसानों का राज कहते हैं। मार्क्सवादी शासन का उद्देश्य

१ एवरी बडीज पोलिटिकल व्होट इज व्हॉट-जार्ज बर्नार्ड शॉ पृ० ३४१

वर्गहीन जनतन्त्री समाज का निर्माण है। पर ऐसे समाज की रचना जनता को निर्दयता के साथ इस आशा से सैनिक-संगठन मे जकड़कर की जा रही है कि आगे चलकर यह शासन गायब हो जायगा। पर जैसा कि प्रो० ऐल्डस हक्सले ने कहा है इस अत्यन्त केन्द्रित सत्ताधारी शासन का नाश या तो महायुद्ध से हो सकता है, या नीचे से उठी क्रान्ति से। वह अपने आप गायब हो सकता है यह मानने के लिए तो तनिक भी कारण नही है।[1] जॉन गुन्थर को भय है कि यह मजूर और किसानो का अधिराज तो नहीं होगा पर उनपर अधिराज हो जायगा।[2] प्रो० जोड अपनी किताब गाइड टु दि फिलासफी ऑफ मारस एण्ड पोलिटिक्स मे लिखते हैं:—

"इतिहास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अधिनायकत्व जैसे-जैसे वह पुराना होता जाता है–प्रकृत्या ढीला नहीं– अधिकाधिक कठोर होता जाता है। टीका और आलोचनाये सहने की शक्ति उसकी घटती जाती है और वह अधिकाधिक अधीर—उतावला होता जाता है। संसार में आज जो घटनाये घट रही हैं वे इस विचार का समर्थन करती हैं। फिर भी कम्यूनिस्ट सिद्धान्तो मे इतिहास की इन शिक्षाओं के ठीक विपरीत यह बताया जा रहा है कि किसी खास क्षण पर अधिनायक शासन अपने यन्त्रों की गति को पलट देंगे, वे सत्ता को छोड़ देंगे और अबतक जो स्वतन्त्रता देने से इनकार किया जाता रहा है वह दे दी जायगी। पर न तो इतिहास और मानस शास्त्र इस परिणति की सम्भवनीयता को स्वीकार कर सकते हैं।"

प्रो० गिन्स वर्ग अपनी पुस्तक 'समाज का मानस' (सायकॉलॉजी ऑफ सोसायटी) में बताते हैं कि किस प्रकार सत्ता को केन्द्रित करनेवाला हर प्रकार का शासन एक-तन्त्री बनता जाता है। आचार्य विनोबा भावे भी यही मानते हैं। क्योंकि सत्ता का केन्द्रीकरण चाहे पूंजीवादी हो या समाजवादी,

१ एण्ड्स ऐण्ड मीन्स पृ० ६३ २ इनसाइड यूरोप पृ० ५७४

उसमें हिंसा, दमन और सैनिकवाद तो होता ही है।[१]

जनतन्त्र के पक्ष में

इसलिए संसार के सामने केवल एक ही रास्ता है—जनतन्त्र। मनुष्य के व्यक्तित्व को सुव्यवस्थित रूप से विकास करने का अवसर उसीमें मिलता है या यों कहें कि मिलना चाहिए। जहा उसके अन्दर मनुष्य को व्यक्तिगत स्वतन्त्रता दी जाती है तहा साथ-साथ वह व्यक्तियों को यह भी याद दिलाता रहता है कि राज्य में न्यायोचित अधिकारों के साथ-साथ राज्य या समाज के प्रति भी उनके कुछ कर्तव्य हैं। लिकन ने जनता द्वारा, उसके अपने हित में अपने (जनता के) शासन को जनतन्त्र कहा है। यद्यपि अतिपरिचय के कारण यह कथन एक मामूली मुहावरा बन गया है फिर भी हम मानते हैं वह कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। जैसा कि श्रीमती एलेन होवर रूजवेल्ट ने कहा है—जनतन्त्र मे नीति और धर्म दोनों हैं। उसमे बन्धु-भाव और एक दूसरे के प्रति गहरा आदर भाव है। यहा तक कि हमारी अपनी भी सफलता सच्ची और वास्तविक वही होगी जब वह दूसरों की सफलता में सहायक होगी।[२]

प्लेटो जनतन्त्री शासन को पसन्द नहीं करता था, क्योंकि उसमें शासन सुस्त चरित्रहीन लोगों के वर्ग के अधीन चले जाने की सम्भावना थी।[३] इसीलिए जनतन्त्र के बजाय तत्त्वज्ञ राजा का बुद्धिमत्ता भरा एक-तन्त्री शासन उसकी नजर में अधिक अच्छा था। रूसो कहता 'सम्पूर्ण जन-तन्त्र मनुष्य के काम की चीज नहीं है। हा, अगर देवताओं का देश हो तो भले ही उनका शासन जनतन्त्री हो सकता है"।[४] डी तकाविले इस नतीजे पर पहुचे हैं कि जनतन्त्र समाज में औसत दर्जे की मरी समानता पैदा कर देता है। सर हेन्रीमेन को यह भय था कि जनता का

१ स्वराज्य शास्त्र (हिन्दी संस्करण) पृ० २४-२५

२ दि मॉरल बेसिस ऑफ डेमोक्रेसी पृ० १३

३ रिपब्लिक बुक आठवीं।

४ दि सोशल कंट्राक्ट, अध्याय चौथा

गज निर्माण करने से प्रगति रुक जायगी। लेकी की राय है कि जन-तन्त्र में कदम-कदम पर हस्तक्षेप का भय रहता है और स्वाधीनता के विचारों का विरोध (antithetical) होता है। बिस्मार्क जनतन्त्र को घृणापूर्वक भावुकता का रोना कहता था। प्रसिद्ध फ्रेंच लेखक फैकेट जनतन्त्र को 'अयोग्यता का' सम्प्रदाय कहता था। नित्शे कहता, जनतन्त्र राजनैतिक संगठन को पतन की ओर ले जाता है। वॉल्टेर जनतन्त्र का इस-लिए विरोधी था कि वह मनुष्यों को बैल—पशु मानता था और इसलिए उन्हें आर, जुए और घास का ही पात्र समझता था। हमारे अपने जमाने में बर्नार्ड शा लिंकन द्वारा की गई जनतन्त्र की परिभाषा को अद्भुत बेव-कूफी मानते हैं। वे कहते हैं लोगो ने शासन में काफी रुकावटें डाली हैं, बगावतें की हैं, परन्तु उन्होंने सही मानों मे शासन—राज चलाने का काम तो कभी किया ही नहीं।[1]

पर इतना सब होने पर भी हमें कहना होगा कि जनतन्त्र ही एक पद्धति है जिसमें व्यक्ति और राज्य के हितों का सामजस्य हो सकता है। जैसा कि मैंने प्रारम्भ मे कहा है, यद्यपि तमाम देशों के लिए सदा सर्व-काल किसी ऐक प्रकार का शासन सर्वोत्तम नहीं कहा जा सकता, फिर भी यह तो मानना ही होगा कि अकेला जनतन्त्र ही 'अच्छे जीवन' के विकास के लिए आवश्यक परिस्थिति निर्माण कर सकता है। लॉर्ड ब्राइस ने कहा है—समाज के अधिक-से-अधिक सख्या में समान अधिकारों के साथ शासन मे समान अधिकारों के साथ हिस्सा लेने का मौका मिलने से समाज के समस्त व्यक्तियों को बड़ा सन्तोष मिलता है और इससे समाज का हित भी होता है।[2] इसके अलावा जैसा कि प्रो० लेनार्ड ने कहा है—जनतन्त्र निरी एक शासन-पद्धति नहीं है। वह एक सामाजिक आदर्श भी है। और आदर्श जितना उच्च होगा उतना ही व्यवहार में

१ एवरी बडीज पोलिटिकल वॉट इज वाट—पृ० ३३६
२ मोडर्न डेमाक्रसी—जिल्द १, पृ० ५०

उसका मुश्किल होना भी स्वाभाविक ही है।[1]

जनतन्त्र अत्यन्त मूल्यवान वस्तु है, क्योंकि उसमें मानवता का आदर है। मिसेस वेब कहती हैं कि राजनीति में जनतन्त्र का यह चमत्कार है कि उसमें मनुष्य के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए अवकाश है।[2] जान स्टुअर्ट मिल लिखता है कि 'जनतन्त्र का सबसे बड़ा गुण तो यह है कि अन्य किसी भी पद्धति की अपेक्षा इसमें अधिक अच्छे और ऊंचे प्रकार से राष्ट्र के चरित्र का विकास होता है। शिक्षणात्मक दृष्टिकोण से भी जनतन्त्र अच्छी चीज है क्योंकि जैसा कि प्रो० बर्न्स कहते हैं 'सबसे अच्छी शिक्षा वह होती है जो मनुष्य खुद-बखुद प्राप्त करता है। राजनैतिक बुद्धि के जिन स्रोतों तक दूसरी पद्धतियां पहुँच भी नहीं पाती हैं जनतन्त्र वहां पहुंचकर उनका उपयोग कर लेता है।'

परन्तु साथ ही यह भी मंजूर करना होगा कि जीवन की अन्य कितनी ही अच्छी बातों की भांति जनतन्त्र में भी कई बुराइयां हैं। आज इनकी वजह से जनतन्त्र की आफत आगई है। सच तो यह है कि आज वह कसौटी पर है। उसका भविष्य सन्देह में पड़ गया है, कल इसका क्या रूप होगा कह नहीं सकते। आइए, जनतन्त्र पर आये इस संकट का हम जरा विस्तार से विवेचन करें।

: ३ :

जनतन्त्र की मुसीबत

सन् १९१४-१७ का महायुद्ध जनतन्त्र की रक्षा और युद्धों को हमेशा के लिए दुनिया से मिटाने के लिए लड़ा गया था। परन्तु उस लड़ाई के बाद दुनिया को बड़ी निराशा हुई। वर्साय की सन्धि ने शान्ति की स्थापना करने के बजाय इस दूसरे युद्ध की बुनियाद डाल दी जो

१ डेमाक्रेसी: दि थ्रेटेंड फाउण्डेशन पृ० ६

२ मोडर्न स्टेट पृ० ८४

भगवान् की दया से अब समाप्त हो गया है। जनतन्त्र के लिए संसार को सुरक्षित करने के बजाय संसार के सामने यह समस्या खड़ी हो गई कि वह अपने आपको इस तथाकथित जनतन्त्र से कैसे बचावे। जनतन्त्री युग को जबरदस्ती लादने के प्रयत्न ने यूरोप में अधिनायक तन्त्री अमलदारियों को जन्म दिया। इन अधिनायक तन्त्रों का मुकाबला करने के लिए जनतन्त्री सरकारों ने जान में या अनजान में अपने प्रदेशों से भी जनतन्त्र को देश-निकाला दे दिया। अटलांटिक चार्टर के शब्दों में दूसरा महायुद्ध इस तत्व के लिए लड़ा गया कि दुनिया के तमाम देशवासी अपने लिए जिस प्रकार की चाहें शासन-पद्धति कायम कर सकते हैं। यह उनका अधिकार है। परन्तु खेद है कुछ राष्ट्रों की

फिर यह मौका गवा दिया गया है। बर्नार्ड शा कहते हैं—"पश्चिम में कहीं भी जनतन्त्र नहीं है। वहां तो सर्वत्र विशुद्ध दौलतमन्दों की—और अब तो नख-शिखान्त—फासिस्ट हुकूमतें हैं।" ये वचन इंग्लैंड की मौजूदा मजूर-सरकार को भी पूर्णतया लागू होते हैं क्योंकि साम्राज्यवाद और जनतन्त्र आपस में कभी मेल खा ही नहीं सकते। सिर्फ इतना ही फर्क है कि अब चर्चिल के फासिज्म के बजाय वहां मजदूर हुकूमत की डिक्टेटरी कायम हो गई है। सयुक्त-राष्ट्र (अमेरिका) नया और जरा अधिक अक्लमन्द राष्ट्र है। उसे प्रत्यक्ष "दिखनेवाले साम्राज्य" की पर्वाह नहीं है। परन्तु छिपे-छिपे वह अपने अदृश्य साम्राज्य के हाथ पैर—खास तौर पर चार तरह की आजादी के नाम पर—निश्चित रूप से फैला रहा है। पर इन तीनों में सोवियट रूस सबसे अधिक होशियार है। समाजवाद के लिए ससार को सुरक्षित करने के लिए वह सारी दुनिया को पदाक्रान्त करने पर तुल गया है। इस तरह इस दूसरे महायुद्ध के बाद भी जनतंत्र का भविष्य अत्यन्त अन्धकारमय और निराशाजनक है। और अब कहीं संयुक्त राष्ट्रों ने विभक्त राष्ट्र होने का निश्चय कर लिया तो समझ लीजिए कि संसार का पूर्ण विनाश निश्चित है। ब्रिटेन का शासन करनेवाली लेबर पार्टी के प्रभावशाली मुख-पत्र "डेली हेरल्ड" ने साफ तौर पर लिख दिया है कि "ससार आखें खोलकर फिर महायुद्ध की तरफ चल पड़ा है। इस गति से तो बहुत जल्दी हमे हिटलर की मौत पर शोक करना होगा क्योंकि हमको एकता मे बाधनेवाला वही अकेला था।"

पूंजीवादी जनतन्त्र

पश्चिम की जनतन्त्री हुकूमतें आज जिस नाजुक अवस्था मे से गुजर रही हैं उसके कारणों को ढूंढने के लिए बहुत दूर जाने की जरूरत नहीं है। प्रो० टॉनी के शब्दों मे कहें तो "आज की आर्थिक और राजनैतिक नासाज़ी की जड़ में हमारा लालची समाज है। पूंजीवाद तभी तक मीठा और उदारता का ढोंग बना सकता है, जब तक उसकी जेब को कोई हाथ नहीं लगाता। वह सामाजिक सुधार और राजनैतिक आजादी का भी

लालच जनता को दिखा सकता है। पर उसकी साफ-साफ शर्त यह होगी कि इस आजादी का प्रयोग खुद पूंजीवादी पद्धति की जड़ काटने के लिए नहीं किया जायगा। और ज्यों ही उसे यह भय हो जाता है कि उसका अपना अस्तित्व खतरे में पड़ रहा है तो वह फौरन फौलादी घूंसे को छिपानेवाले मखमली दस्तानों को निकाल फेंकता है। वह तो तभी तक ठीक है जब तक उनकी राग में राग मिलाते जाइए। अपने पुराने वैभव और मौजूदा ऐशो-आराम की रक्षा के लिए वह चीते की तरह झपटने में कभी नहीं हिचकता। और फासिज्म आखिर और क्या होता है? भूतकाल के वैभव की हिंसापूर्वक रक्षा द्वारा भविष्य को कैद करने का यत्न करनेवाले विशेष अधिकारवालों का मृत्यु-गीत ही तो है। दूसरे शब्दों में अपनी जान बचाने के लिए पूंजीवादी जनतन्त्र की वह अन्तिम छटपटाहट है[1]। असल में पूंजीवाद और जनतन्त्र के बीच स्वाभाविक और आंतरिक विरोध है। पूंजीवादी समाज में उत्पादन के साधनों के मालिक का उत्पादन में मुख्य उद्देश नफा होता है। इसके विपरीत जन-तन्त्र में मनुष्य अपने राजनैतिक अधिकारों का उपयोग राज्य की सत्ता द्वारा समाज की सुख-सुविधा बढ़ाने में करने का यत्न करता है। आर्थिक जगत के एकतन्त्र का राजनैतिक जनतन्त्र के साथ तब तक बराबर मेल क़ायम रहा जब तक पूंजीवाद अपने विकास-विस्तार की अवस्था में था। परन्तु पिछले महायुद्ध के बाद से पूंजीवाद का ह्रास शुरू हो गया। फलतः आज हम समाज में व्यापक बेकारी फैली देखते हैं जिसके परिणाम-स्वरूप विपुलता के बीच अकाल का चमत्कार दिखाई दे रहा है। जनता ने राजनैतिक सत्ता का उपयोग अपनी माली-हालत सुधारने के लिए करना चाहा। पर यह तो मालदार लोगों के विशेषाधिकारों को सीधी चुनौती थी। इसीलिए फासिस्ट ढंग की डिक्टेटरी और सर्व सत्ता-धारी हुकूमत शुरू हुई। आज ब्रिटेन और युक्तराष्ट्र का तथाकथित जनतन्त्र भी नख-शिखान्त (सर से पैर तक) फासिस्ट बन गया है। ब्रिटेन

१ 'व्हेयर डू वी गो फ्राम हियर' ?

और जर्मनी के बीच प्रकार का नहीं, केवल मात्रा का ही अन्तर रह गया था। क्योंकि इटली और जर्मनी में समाजवाद का खतरा अधिक तीव्र था, इसलिए वहा का फासिज्म अधिक आक्रामक और निरंकुश हो गया; बस, यही।

जनतन्त्री देशों में पूंजीवाद के सामने कोई ऐसा गम्भीर खतरा नहीं खड़ा था। इसलिए वह अपेक्षाकृत अधिक शांत और सहिष्णु रह सकता था। पर सच्चा जनतन्त्र उस समाज में असम्भव है जो अफलातूं के शब्दो मे कहें तो "गरीबों के शहरों और अमीरो के शहरों" मे बटा हो। जब तक राज्य मे समाज का विभाजन आर्थिक वर्गों मे प्रकट होता रहेगा, इस वर्ग के अनुचरों के हाथों म ही उत्पादन के साधन होंगे या उनपर उनका प्रभुत्व होगा।[1]

इसलिए आर्थिक क्षेत्र में जिन बातों को बुनियादी सिद्धान्तो क तौर पर अभी मान लिया गया है जब तक वे नहीं बदलेंगी तब तक हमारे समाज की प्रकृति मे भी कोई खास फर्क नहीं होगा। तब तक जनतन्त्र बराबर पूंजीवाद का खरीदा हुआ गुलाम बना रहेगा। क्योंकि धारा-सभाओं, अखबारों, प्रकाशन गृहों, शिक्षा-संस्थाओं तथा प्रचार के अन्य साधनों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मालदार वर्ग का ही नियन्त्रण है। और वह जनतन्त्र से भी बराबर अनुचित लाभ उठाता रहेगा और अंत में उसे लोकशाही से पूंजीशाही मे बदल देगा। लार्ड ब्राइस ने ठीक ही कहा है कि "पूंजीशाही से अधिक कट्टर और दीर्घद्वेषी दुश्मन जनतन्त्र का और कोई नहीं।" और दुश्मन भी बड़ा भयंकर। क्यों कि वह जोर-जबरदस्ती से नहीं, गुप्त रीति से, धोखा देकर और फुसलाकर अपना काम करता है। और इसलिए लोग गफलत में रह जाते हैं।[2] पुराने जमाने के 'पाकेट बरोज' से लेकर इस युग की 'लॉबीइंग' और 'नर्सिङ्ग कान्स्टि-

१ दि स्टेट इन थियरी एण्ड प्रेक्टिस—प्रो० लास्की—पृ० ३२८

२ मॉडर्न डेमाक्रसीज (जिल्द दूसरी)—पृ० ५२२

स्यू एर्न्सीज' तक पूंजीवादी जनतन्त्र की शरारतें बराबर ज्यों-की-त्यों कायम हैं।

लोकशाही बनाम हुल्लड़शाही

आधुनिक जनतन्त्रों मे पैसे का जो बुरा प्रभाव है उसके अलावा चुनाव की प्रथा भी बड़ी दोषपूर्ण और अनिष्ट है। मतदाताओं के संघ बहुत विशाल होने के कारण मतदाता और उम्मीदवारों के बीच प्रत्यक्ष सम्पर्क एकदम असम्भव हो जाता है। इसलिए चुनाव की मुहिम अनिवार्य हो जाती है, जिसकी बुराइयों से हम सब खूब परिचित हैं। बर्नार्ड शा अपने अनोखे ढग से इन चुनावों की सभाओं को "निन्दनीय और घृणित" बताते हैं जिनमें "समझदार आदमी बगैर नशा किये इस तरह चीखते-चिल्लाते रहते हैं, मानो उन्हें कोई होश ही न हो। यहा तक कि राह से निकलता हुआ मामूली आदमी कहीं उन्हें देख ले तो उसे यह निश्चय हो जाय कि वह कहीं किसी पागलखाने में चला आया है, जहा अत्यन्त भयानक मानसिक दुरवस्था मे पहुचे हुए पागलों को रक्खा जाता है।" वे आगे कहते हैं "जैसे-जैसे मेरी उम्र बढ़ती जाती है, यह देखकर मुझे और भी अफसोस होता है कि राष्ट्र की सरकारों ने भी इसे एक गम्भीर काम समझ रक्खा है। यह तो असह्य है और मनुष्य-स्वभाव तथा नागरिक सभ्यता के लिए एकदम घृणोत्पादक है।"[1] मतदार हलके बेहद बड़े होने के कारण इस बात का कोई निश्चय नहीं रहता कि प्रतिनिधियों का चुनाव सही-सही ही होगा। गांधीजी कहते हैं "यह तो लोकशाही के बजाय हुल्लड़शाही है। सभ्य, योग्य, और शान्त स्वभाववाले आदमी तो चुनावों की इस फजीहत से अपने आपको दूर ही रखना पसन्द करते हैं, इसलिए अविवेकशील और मोटी खालवाले उम्मीदवार रिश्वत और अनैतिकता के बल पर जीत जाते हैं। फिर इन चुनावों मे खर्चा भी इतना लगता है कि लोकशाही पूंजीपतियों के कब्जे में ढकेल दी जाती है और कुल

[1] 'दी पोलिटिकल मेड-हाउस इन अमेरिका एण्ड नियर होम' पृ० २५-२६।

मिलाकर उन्हींके हाथों में सत्ता भी पहुंच जाती है। इसके अलावा बड़े-बड़े क्षेत्रों में चुनाव की पद्धति एक प्रकार से यन्त्रवत निर्जीव बन जाती है; क्योंकि वोटर प्रायः उम्मीदवार को नहीं जानते, जो कहीं उत्तर-चन्द्रियों में बैठे दलों द्वारा खड़े कर दिये जाते हैं। इसलिए चुनावों में जनता की दिलचस्पी भी बहुत कम होती है। क्योंकि शासन और कानून बनाने की क्रिया में ज़बरदस्त केन्द्रीकरण होता है। इसलिए आमतौर पर प्रायः तमाम जनतन्त्री देशों के वोटरों में अब इन वस्तुओं के प्रति एक प्रकार की अरुचि-सी हो रही है। क्योंकि जब चुनाव होते हैं तब वोटरों को पोलिंग स्टेशनों पर एक तरह से खींच-खींचकर ले जाना पड़ता है। संयुक्त-राष्ट्र जैसे प्रगतिशील देश में भी साधारणतया केवल आधी जनता, जिसे मत देने का अधिकार है, उसका उपयोग करने के लिए जाती है। जिस पद्धति में मस्तकों की नहीं बल्कि केवल हाथों की गिनती होती है, जहां मतों को तौला नहीं, बल्कि केवल गिना जाता है, वहां यह उम्मीद नहीं करनी चाहिए कि बुद्धिशाली वर्ग उसमें बहुत उत्साह दिखावेगा।

राजनैतिक चुनाव-संगठन

सुसंगठित राजनैतिक दलों के अत्यधिक प्रचार के कारण स्वतंत्र विचार और कार्य के लिए बहुत कम अवकाश रह जाता है। एक आदमी किसी जगह के लिए अच्छे-से-अच्छा उम्मीदवार हो सकता है। पर अगर वह उन दलों के नेताओं का प्रीतिपात्र नहीं है, तो उसके चुने जाने की कोई उम्मीद नहीं करनी चाहिए। धारासभाओं में तो पार्टी के सदस्यों के पीछे भी हमेशा 'हंटर' लेकर लगे रहने की ज़रूरत रहती है। मेरा मतलब यह नहीं कि इस आधुनिक पार्टी-प्रथा में कोई भलाई ही नहीं है। उदाहरणार्थ राष्ट्रीय महत्त्व रखनेवाले कुछ खास-खास प्रश्नों पर लोकमत को शिक्षित करने में इसका बड़ा उपयोग होता है। पर यह तो मानना ही होगा कि आधुनिक पार्टियां बहुत सख्त हो गई हैं। ए० आर० लॉर्ड के शब्दों में यह पार्टी-प्रथा यन्त्रवत् जड़-सी प्रतीत होती है। इसमें लोकमत को पूरी तरह और सही-सही रूप से आंककर नहीं प्रकट किया जा

सकता।' एच० जी० वेल्स ने लिखा है—"हमारी वर्तमान चुनाव-प्रथा प्रातिनिधीक शासन-पद्धति का निरा मजाक है। अटलांटिक के दोनों तरफ बहुत बड़े-बड़े, मूर्खता भरे और भ्रष्ट पार्टी-संगठन कायम हो गये हैं।"" धारा सभाओं में विभिन्न विषयों की बहसों में अब कोई सार नहीं रहा है, क्योंकि प्रत्येक वाद-विवाद का परिणाम पार्टियों की संख्या पर पहले ही से निश्चित रहता है। तथाकथित प्रातिनिधीक पार्लमेन्टों के प्रति अब जनता में कोई आदर नहीं रह गया है। वे तो निरे जबानी जमा खर्च की दूकानें रह गई हैं।

केन्द्रीकरण

: ४ :

गांधीजी का तरीका

लोकशाही इस संकट को कैसे पार कर सकती है? इस सम्बन्ध में आधुनिक विचारकों ने कई तरीके सुझाये हैं। रामसे म्योर अपनी किताब "क्या लोकशाही असफल रही?" (इज डेमोक्रसी फेल्यूअर?) नामक पुस्तक मे उसे अनुपात वाले प्रतिनिधित्व की हिमायत करते ह, जो सिंगल ट्रान्सफरेबल वोट से हो। क्योंकि इस पद्धति से देश में छोटी संस्थावाले बहुत बड़ी बहुमति प्राप्त नहीं कर सकेंगे। और जब पार्लमेंट बनेगी तब उसमें सभी रायों का समुचित प्रतिनिधित्व हो जायगा। उम्मीदवारों की नामजदगी के समय पार्टियों की चुनाव हलचल का भी इस सानुपात प्रतिनिधित्ववाली पद्धति द्वारा अन्त हो जायगा; क्योंकि उससे देश के उत्तमोत्तम लोगों को मौका मिल जायगा। इसके अलावा मि० म्योर पार्लमेंट मे काम के बोझ को कम करने के लिए कमिटिया बना देने की पद्धति भी सुझाते हैं। हालाकि उनके सुझाव व्यावहारिक हैं, परन्तु इनसे समस्या पूरी तरह हल नहीं होती। ये सुझाव केवल उसे ऊपर से छू जाते हैं। सानुपात प्रतिनिधित्व अच्छी वस्तु है। परन्तु केवल उससे काम न चलेगा। फिर प्रत्यक्ष शासन और कानूनों के बनाने में जो सत्ता का केन्द्रीकरण हो जाता है उसका भी हल इस कमिटी वाले सुझाव में नहीं है। लार्ड ब्राइस अब सारी आशा मनुष्य जाति की बौद्धिक और नैतिक प्रगति में लगाये बैठे हैं। वे कहते हैं "जब मनुष्य की बुद्धि का विकास होगा, तो पारस्परिक सहानुभूति और कर्तव्य भावना भी जागेगी और इनके आते ही सब कुछ ठीक हो जायगा[२]।" परन्तु आधुनिक जनतन्त्री हुकूमतो में जो सडन घुसी हुई है, वह शुभेच्छाओं से नष्ट नहीं होगी। इस समस्या की उलझनो को सुलझाने

२ मॉडर्न डेमाक्रसीज़—पृ० ६६६

लिए कुछ रचनात्मक और ठोस उपायो को भी काम मे लाना होगा। लास्की को आशा है कि "स्थापित स्वार्थों को समाज की सपत्ति बनाकर भावी विपुलता के अन्दर से हम गरीबी को बिलकुल नष्ट कर सकेंगे और इससे समाज में स्थायी और मजबूत लोकशाही की नींव डाल सकेंगे। पर क्या केवल सम्पत्ति पर समाज का स्वामित्व काफी होगा? हम पहले ही देख चुके हैं कि सोवियट रूस मे भी सम्पत्ति पर समाज का अधिकार हो गया है। पर इसका परिणाम क्या हुआ है? हम देखते हैं कि वहा किस प्रकार सत्ता का केन्द्रीकरण हुआ है, और किस प्रकार समाज को सैनिक संगठन में जकड़ दिया गया है। सर स्टेफ़र्ड क्रिप्स कहते हैं कि "हमको शासन के ऐसे रूपों का निर्माण करना चाहिए कि जिनमे आर्थिक सयोजन और सम्पूर्ण केन्द्रीकरण की जो कार्य क्षमता होती है उसका उस राजनैतिक और सांस्कृतिक स्वतत्रता के साथ, जो केवल लोकशाही के अदर ही पाई जाती है, पूर्ण समन्वय हो'। चेकोस्लोवाकिया के प्रेसीडेण्ट एडवर्ड बेन्स लोकशाही नेता के गुणों की एक लम्बी फेहरिस्त गिनाते हैं। उसके अन्दर कई गुणों का सुन्दर समन्वय होना चाहिए। उदाहरणार्थ वह एक ऊंची कोटि का आदमी हो, उसकी बुद्धि परिपक्व और सुसस्कृत हो, उसका ज्ञान शास्त्र-शुद्ध हो, सूझ-बूझ अच्छी हो, उसमे तेज हो, जल्दी निर्णय और तुरन्त काम करने की क्षमता हो तथा शारीरिक बल हो और नैतिक सामर्थ्य भी हो।[२] पर सवाल यह है कि ऐसे काबिल आदमी हमे मिलेगे कहा?

अपने दस्तूर के मुताबिक बर्नार्ड शा का इस पर भी एक मौलिक सुझाव है। उनकी राय है कि बालिग मताधिकार लोकशाही को जान से मार डालता है। 'टाइम एण्ड टाइड' के एक ताजा अक में वे लिखते हैं—"मै प्राणि-विज्ञान की उस शाखा का विद्यार्थी हू, जिसे मनुष्य-स्वभाव कहते हैं। कहा जाता है कि जनता की आवाज ईश्वर की आवाज

१ डेमाक्रसी अप-टू-डेट—पृ० १०७

२ डेमोक्रसी टुडे एण्ड टुमोरो—पृ० २१२

है। यह भी माना जाता है कि २१ साल की उम्र हो जाने पर हर आदमी की राजनैतिक योग्यता और होशियारी एकदम अनन्त गुनी बढ जाती है और यह कि वह कभी भूल कर ही नहीं सकता। मेरे लिए तो यह परियों के देश की कहानी जैसी वस्तु है। मैंने इसे कभी सही नहीं माना है और न कभी इस मान्यता को मैंने अपने विचार का आधार बनाया है।" इसलिए उनका सुझाव है कि "योग्य और परखे हुए आदमियों की एक समिति या सभा हो और वह देश का शासन करे। हा, उस पर कड़ी से कड़ी टीका करने का और उसे हटाने तथा समय-समय पर बदल देने का भी जनता को जरूर अधिकार हो।"[1] उनकी राय यह है कि लोकशाही के हिमायती का असली काम यह है कि वह कोई ऐसी कसौटी ढूंढ निकाले जिससे उच्च प्रकार के स्त्री या पुरुष कानून-निर्माताओं को फौरन पहचाना जा सके। इनकी फिर एक मण्डली बना दी जाय और जब जरूरत हो इस मण्डली में से समाज अपनी धारा-सभाओं के लिए कानून-निर्माताओं का चुनाव कर लिया करे। इस तरह शा ऐसे शासन को अच्छा मानते हैं जिसे 'केन्द्रित सत्ता वाली लोकशाही' कहा जा सकता है। परन्तु हम आदर पूर्वक इन अपूर्व नाटककार से पूछना चाहते हैं कि इस उक्त प्रकार के आदमियों की कसौटी का निर्णय कौन करेगा? साफ है कि ये बड़े कानून-निर्माता अपने आपको राष्ट्र के उद्धारक या देवता बताकर खुद ही यह काम अपने कन्धों पर ले लेंगे। इसलिए शा की कल्पित लोकशाही भी सच्ची लोकशाही नहीं; सर्वसत्ता-धारी तन्त्र ही होगा।

तब लोकशाही किस राह को पकड़ेगी? हमारी राय है कि उसे गाधीजी का तरीका ही अपनाना होगा, जिसमें दो बुनियादी सिद्धात हैं अहिंसा और विकेन्द्रीकरण। इन सिद्धातों को मैं जरा विशद कर दूं।

अहिंसा

महात्मा गाधी की राय है कि लोकशाही की रक्षा अहिसा से ही हो

[1] एवरी बडीज़ पोलिटिकल वॉट इज़ वॉट—पृ० ३४१

सकती है, क्योंकि जिस हद तक उसमे हिंसा की सहायता ली जायगी वह गरीबों का भला या रक्षा नहीं कर सकेगी। "लोकशाही के बारे मे मेरी यह कल्पना है कि उसके अन्दर कमजोर से कमजोर को भी अपने विकास के लिए उतना ही अवकाश मिलना चाहिए जितना कि सबसे बलिष्ट को। हिंसा के अवलम्बन मे यह कभी सम्भव ही नहीं है।'[1] आज पश्चिम मे लोकशाही जिस रूप में प्रचलित है, वह नाजीज्म या फासीज्म का ही एक सौम्यसा रूप है। हम यों भी कह सकते हैं कि साम्राज्यवाद की नाजी या फासिस्ट प्रवृत्तियों को छिपाने के लिए ऊपर से डाला गया वह एक चोगा मात्र है।" फिर "लोकशाही और हिंसा आपस मे एकदम बे-मेल चीजे हैं। जो राष्ट्र आज कहने भर को जनतन्त्री हैं उन्हें या तो साफ-साफ तौर पर सत्ता के पूर्ण केन्द्रीकरण की तरफ जाना होगा या अगर उन्हें सचमुच जनतन्त्री बनना है तो साहस पूर्वक अहिंसा का अनुगामी होना पड़ेगा। अन्यथा सच्चा जनतन्त्री शासन एक सपना ही बना रहनेवाला है।[2] पूंजीवादी समाज तो प्रत्यक्ष शोषण है। और शोषण चाहे वह किसी प्रकार का हो उसकी प्रकृति में ही हिंसा है। इसलिए अगर शोषण को मिटाना है, तो हमे अहिंसक समाज या अहिंसक राज्य की स्थापना करनी होगी। इस समाज की रचना निश्चय ही आर्थिक स्वतंत्रता और समानता के आधार पर ही हो सकती है क्योंकि बगैर आर्थिक न्याय के सच्चे अर्थों में राजनैतिक जनतन्त्र का अस्तित्व ही असम्भव है।

इस आर्थिक समानता और स्वतन्त्रता को हम कैसे लावे? एक रास्ता है सोवियट कम्यूनिज्म का, जैसा कि रूस में है। व्यवहार मे उसका अर्थ है किसानों और मजदूरों की डिक्टेटरी अर्थात् मालदार लोगों का हिंसक और निर्दयता के साथ दबा दिया जाना। इसमें खुद मजदूरों और किसानो का भी जीवन इतनी कठोरता और इतनी पूर्णता के साथ जकड़ दिया जाता है कि उसमें स्वतन्त्रता या लोकशाही जैसी कोई वस्तु ही नहीं

१ 'हरिजन' ता० १८-५-१९४०
२ ,, ता० १२-११-१९३८

रह जाती। दूसरे शब्दों में कहें तो इलाज बीमारी की अपेक्षा भी अधिक तकलीफ़ देह होजाता है। ओरिम ग्रुजकूज ने ठीक ही कहा है कि 'मनुष्य के व्यक्तित्व को पूर्णतया दबा देनेवाली एक लेवियेथन प्रणाली के शासन का जिक्र हॉब्स ने किया है, वह इस समाजवादी राष्ट्र में जितनी पूर्णता के साथ पाई जाती है, उतनी न तो पुराने ढग की पश्चिमी राजसत्ताओं में थी, और न आज की जनतन्त्री शासन-प्रणालियों में है।'[1] मेक्स ईस्टमन सोवियट रूस का जबरदस्त हिमायती था। पर उसका भी भ्रम बाद में दूर हो गया। वह लिखता है—"अब मेरा खयाल है कि मजूर और किसानों के राज की स्थापना के नाम पर, या रोमन साम्राज्य की स्थापना के लालच से या अन्य किसी भी नाम से जब मुट्ठी भर आदमी एक मजबूत संगठन बनाकर सत्ता को अपने हाथ में ले लेते हैं, फिर वे चाहे कितनी ही होशियारी के साथ जनता को अपने साथ शामिल कर ले, उसका परिणाम होगा सत्ता के पूर्ण केन्द्रीकरण में ही।[2] और केन्द्रीकरण, नये से नये साधनों से, अत्याचार का दूसरा नाम मात्र ही है। युद्ध के यन्त्र को अत्यन्त कार्यक्षम बनाने के नाम पर भी ऐसे अत्याचारी शासन में मनुष्य के व्यक्तित्व के स्वाभाविक और स्वतन्त्र विकास का गला घोंटा जाता है। जॉन स्टुअर्ट मिल के शब्दों में हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि "राज्य का मूल्य उसके द्वारा शासित व्यक्तियों के जीवन से आका जाता है।" नागरिक अपने आपको राष्ट्र के काम के लिए, चाहे वह कितना ही अच्छा हो, चुपचाप सौंप दे, इस बहाने उन्हे बुलाकर किसी भी राष्ट्र को अपने प्रजाजनों के विकास को रोकना नहीं चाहिए। अगर कोई राष्ट्र ऐसा करेगा तो वह देखेगा कि छोटे आदमियों के बल पर कोई बड़ा काम नहीं हो सकता।[3] इसीलिए तो जनतन्त्र का विकास अहिंसात्मक तरीकों से करना परम आवश्यक है।

१ इकनामिक प्लैनिंग इन सोवियट रशा—पृ० ७६
२ स्टालिन्स रशा एण्ड क्राइसिस इन सोशलिज्म—पृ० १२
३ ऑन लिबर्टी (थिंकर्स लायब्रेरी) पृ० १४३

विकेन्द्रीकरण

तब अहिंसक जनतन्त्र का रास्ता क्या है? वह है विकेन्द्रीकरण। हिंसा समाज को निश्चितरूप से केन्द्रीकरण की तरफ ले जाती है। और अहिंसा की प्रकृति है विकेन्द्रीकरण। गांधीजी हमेशा से राजनैतिक और आर्थिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण की जरूरत पर जोर देते रहे हैं। और इसका रास्ता उन्होंने यह बताया है कि गावों को जितना भी हो सके स्वावलम्बी और स्वशासित बना दिया जाय। ऐसा समाज अहिंसक संगठन का सुन्दर नमूना हो सकता है। अलबत्ता, उनका मतलब यह तो हरगिज नहीं है, कि ग्रामीण गणतन्त्रों को अपने पुराने रूप में ही ज्यों-का-त्यों पुनः स्थापित किया जाय। यह न तो सम्भव है और न इष्ट ही। हमारी आधुनिक परिस्थिति और जरूरतों को ध्यान में रखते हुए उनमें आवश्यक सुधार हम करने ही होंगे। फिर पुराने ग्रामीण गणतन्त्र भी एकदम दोष हीन तो नहीं थे। पर हां, यह तो मानना ही होगा कि इन ग्रामीण गण-तन्त्रों में विकेन्द्रित और अधिक-से-अधिक स्वशासित आर्थिक व राजनैतिक संगठन के रूप में एक आदर्श आर्थिक और राजनैतिक संगठन के बीज तो थे ही। इसलिए गांधीजी की निश्चित राय है कि भारत के भावी शासन-विधान में गावों का मुख्य स्थान हो। उनमें अहिंसा और मानवता के आधार पर गृहोद्योगों का संगठन हो और उन का शासन पूर्णतया और सीधा जनतन्त्री आधार पर हो। फिर सब गाव भी तथा उनकी प्रवृत्तियां भी आपस में एक दूसरे के साथ मजबूती के रूप में संगठित हों। गांधीजी कहते हैं "वह शहर सबसे अच्छा होगा जहां [illegible] होगा।" राजनैतिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण और

आपस में तफसीलों के बारे में भले ही मतभेद हो, पर सब-के-सब एक बात में सहमत हैं। सभी की राय है कि जनतन्त्र के अमल में फर्क करके उसे सौम्य बना देना जरूरी है। शासन में राजनैतिक तथा आर्थिक दोनों क्षेत्रों में जो आज अत्यधिक केन्द्रीकरण हो रहा है उसके वे सब विरोधी हैं। प्रो० जाड ने लिखा है—''अगर सामाजिक -अर्थात् सर्व सम्मत कार्यों में मनुष्यों का विश्वास फिर से जगाना है तो 'राज्य' के छोटे-छोटे टुकड़े करने होंगे और उसके कार्यों का इस तरह बंटवारा करना होगा कि एक ही आदमी कई छोटी-छोटी समितियों में एक साथ रह सके, जिनको उत्पादन तथा स्थानीय शासन सम्बन्धी अमली काम करने की सत्ता हो। इनके सदस्य की हैसियत से व्यक्तियों को पुनः यह अनुभव करने का मौका मिलना चाहिए। राजनैतिक दृष्टि से उनका भी कुछ महत्त्व है, उनको भी कोई सत्ता है और वे सचमुच समाज की कोई सेवा कर रहे हैं। इस दिशा में विचार करने पर यह स्पष्ट होगा कि हमें शासन के यन्त्र का आकार-प्रकार भी घटाना होगा। छोटे-छोटे क्षेत्रों में स्वायत्त इकाइयां बनाना होंगी ताकि उनमें काम करने वाले अपने राजनैतिक परिश्रमों का फल प्रत्यक्ष रूप से देख सकें। उनको यह विश्वास हो जाय कि जहां सच्चा स्वशासन है, समाज पर उनकी इच्छा-अनिच्छा और विचारों का असर पड़ता है; क्योंकि समाज और वे अलग-अलग नहीं,

---

२ गिल्ड सोशलिस्ट—ये लोग मानते हैं कि उद्योग-धन्धों का नियंत्रण राज्य और मजदूरों के सहयोग से होना चाहिए।

३ सिंडिकेलिस्ट—ये लोग मानते हैं कि उत्पादन और वितरण के साधनों को ट्रेड यूनियनों (मजदूर संघों) के अधीन रहना चाहिए।

४ अनार्किस्ट (अराजकतावादी)—ये लोग मानते हैं कि समाज को अपनी ऐसी स्वाभाविक साधारण स्थिति में पहुंचा देना चाहिए जिसमें राज्य या किसी शासन-तंत्र की आवश्यकता न हो।—अनु०

एक ही है।[1] प्रो० कोल लिखते हैं "जनतन्त्र केन्द्रीकरण के खिलाफ ही है। क्योंकि जहां-जहां समुदाय की इच्छा के प्रकट होने की ज़रूरत महसूस होती है, वहां आत्मा खुद अपने आपको तत्काल और वहीं प्रकट करना चाहता है।" सबकी एक सम्मिलित मुख्य धारा बनाकर उसमें उसे प्रवाहित करने से उसकी अतः-स्फूर्ति नष्ट हो जाती है, और साथ-साथ व्यक्तित्व भी।[2] "फेबियन सोशलिज्म" नामक अपनी एक अन्य पुस्तक में कोल ने आगे लिखा है—"अगर हम बिलकुल मामूली स्त्री-पुरुषों में मिलकर काम करने की शक्ति बांट देना चाहते हैं और चाहते हैं कि वे सार्वजनिक कामों को समझने लगें तो हमें अपने समाज का निर्माण कमकरों के छोटे-छोटे जनतन्त्रों के आधार पर करना होगा।" एल्डस हक्सले ने कहा है—अच्छे समाज के निर्माण का राजनैतिक उपाय यह है कि सत्ता का केन्द्रीकरण करके समाज को छोटे-छोटे स्वशासित जिम्मेवार घटकों में बांट दिया जाय।[3] सत्ता के केन्द्रीकरण से व्यक्तियों की स्वतन्त्रता की हानि होती ही है, और इनसे जिन देशों में अब तक जनतन्त्री हुकूमत थी, उनमें समाज सैनिक संगठन में उत्तरोत्तर अधिकाधिक जकड़ता जा रहा है। अगर यही पद्धति जारी रही तो हम शायद इस बात को भूल जावेंगे कि जनतन्त्र मनुष्य के लिए है तन्त्र के लिए मनुष्य नहीं। जनतन्त्र एक साध्य का साधन है, इसलिए मनुष्यों की सामाजिक और मानसिक सुविधा के अनुकूल हमें जनतन्त्र को बनाना होगा। आधुनिक समाज-शास्त्री भी मानते हैं कि मनुष्य छोटे-छोटे समूहों में सबसे अधिक सुख का अनुभव करता है।[4] राय ग्लैडी का कथन है कि "यदि मनुष्य के स्वभाव की इस विशेषता का हम ध्यान नहीं रक्खेंगे तो संसार में नवीन समाज की रचना करने की हमारी तमाम बड़ी-बड़ी

१ माडर्न पोलिटिकल थियरी—पृ० १२०-२१

२ ए गाइड टु माडर्न पालिटिक्स—पृ० ५३२

३ एण्ड्स एण्ड मीन्स—पृ० ६३

४ दी फ्यूचर ऑफ एग्रारियन सोसायटी—रॉय ग्लैडी—पृ० ८५

योजनायें चकनाचूर हो जावेंगी। कार्ल मनहीम कहता है कि गिरिये कीड़े की भांति मनुष्य अपने छोटे से समाजरूपी नीव के बाहर ज़िन्दा नहीं रह सकता। प्रो० जिन्सबर्ग भी तो यही कहता है। समाज के एक अंग होने की भावना मनुष्य को अपने छोटे-छोटे समूहों में बन्धु-भाव के प्रेम से जोड़ देती है। प्रेम और एकता के इन बन्धनों में बंधे समाज में ही जनतन्त्र सफल हो सकता है, अन्यत्र नहीं। केन्द्रित सत्तावाली आधुनिक ढंग की जनतन्त्री हुकूमतों में यह चीज़ नहीं पाई जाती।" इसीलिए तो आजकल के प्रातिनिधीक ढंग के राष्ट्रों की खामियों का विश्लेषण करने के बाद प्रो० एडम्स हमें सलाह देते हैं कि "बुराई की जड़ तक पहुंचकर सत्ता को विकेन्द्रित और सौम्य बनाओ'।" प्रो० लास्की विकेन्द्रीकरण को इसलिए पसन्द करते हैं कि जहां सत्ता अत्यधिक रूप से केन्द्रित है ऐसे शासन के मातहत मनुष्य निरे आज्ञा-पालन का अधिकारी रह जाता है और उसकी सारी सर्जन शक्ति मर जाती है। वह यन्त्र की तरह जड़ बन जाता है। केन्द्रीकरण से यकसापन पैदा होता है। और इसमें वह स्फूर्ति नहीं जो एक स्वतन्त्र व्यक्ति में होती है, जो हर जगह और हर मौके पर प्रकट होती रहती है।[२] प्रसिद्ध समाजशास्त्री लेवीज़ ममफोर्ड सुझाता है कि देहात में ऐसे छोटे-छोटे समाजों की रचना करनी चाहिए, जिनको अपना शासन करने की पूरी-पूरी आजादी हो। सच्चे और समाज के लिए अत्यन्त आवश्यक जनतन्त्र की शिक्षा पाने की वे सबसे अच्छी जगहें होंगी। नौकरीशाही वृत्ति के खिलाफ ऐसे समाज एक अमूल्य और रामबाण दवा हैं। स्थानीय समस्याओं के सही सही हल ढूंढने के लिए जानकारी भरी चर्चाओं के लिए भी उनसे खूब अवकाश मिलेगा। लार्ड ब्राइस कहते हैं कि "जनतन्त्र का जन्म सबसे पहले इन छोटी-छोटी इकाइयों में ही हुआ। और यहींसे जनतन्त्र के पुरस्कर्ता और प्रणेताओं ने अपने सिद्धान्त पहले-पहल कायम किये।

१ दि मॉडर्न स्टेट, (अध्याय नवां)—पृ० २३४

२ एन इन्ट्रोडक्शन टु पोलिटिक्स—पृ० ६३

शासन-सस्था पर सच्चे लोकमत का किस प्रकार असर पड़ता है, इसका अध्ययन भी यहीं सबसे अच्छा हो सकता है; क्योंकि जनता के सामने चर्चा के लिए जो विषय आते हैं उनमे से अधिकाश की उनको प्रत्यक्ष जानकारी होती है।[1] स्थानीय स्वशासन के लाभों को विशद करते हुए डा० बेनीप्रसाद लिखते हैं :—

"स्वशासन की सबसे उत्तम इकाई वही है जहाकी परिस्थिति का जनता को पूरा ज्ञान हो और लोग एक दूसरे के जीवन तथा चरित्र तक से परिचित हों। गावों में, कस्बों मे या ऐसे ही छोटे-छोटे समाजो में स्वशासन—सच्चे जनतन्त्र के लाभ प्रकट होते हैं। उनमे नागरिकोचित देश-प्रेम जागता है, मनुष्य को अपने निजी स्वार्थ से ऊपर उठकर देखने का अभ्यास होता है, सहयोग की आदतों को प्रोत्साहन मिलता है, निर्णय करने की शक्ति का विकास होता है और लाखों-करोड़ों को अपना शासन आप करने का मौका मिलता है, जो दूर की प्रातिनिधीक धारा-सभाओं आदि मे जाने की आशा भी नहीं कर सकते। कस्बों और जिलों का स्वशासन केन्द्रीय धारासभाओं और शासन के बोझ को बहुत हलका कर देता है। आजकल के संसार में बड़े-बड़े राज्यों के मतदार-सघों में व्यक्ति बिलकुल डूब-सा जाता है। यह पद्धति व्यक्तियों को इस तरह डूबने से बचा लेगी। भौतिक शक्तियों को देखकर मनुष्य में जिस प्रकार अपनी असमर्थता का भान होता है, कुछ-कुछ इसी प्रकार की असमर्थता के भाव विशाल शासन-यन्त्र भी उसके दिल में पैदा कर देते हैं और इनसे वह दैववादी-सा बन जाता है। स्थानीय स्वशासन से यह बुराई दूर हो जाती है।

यूनान के शहरी राज्य

यूरोप में प्राचीन यूनान के शहरी राज्यों में इसी तरह का स्थानीय स्वशासन था। सर्वोच्च राजनैतिक सत्ता समस्त नागरिकों की सभा की

१ मॉडर्न डेमोक्रसीज (भाग दो) पृ० ४८६

थी। वह सभा खुद सरकार, पार्लमेंट, मन्त्रिमण्डल, धारा-सभा और न्याय-विभाग—सब कुछ थी। नागरिक रोज आपस में मिलते-जुलते थे। एक दूसरे को नजदीक से जानते थे। एक ही छोटे से समाज के सदस्य थे। इसलिए पृथक् और सुसंगठित पार्टीबन्दियों की तथा चुनाव के लिए धुंआधार प्रचार की भी वहां कोई जरूरत नहीं थी, क्योंकि वे राज्य इतने छोटे-छोटे होते थे कि नागरिक-सभा में वोट देने का जिनको अधिकार होता, वे सब एक जगह एकत्र हो सकते थे और वहां उन्हें सारी बातें मनुष्य रूबरू व ज़बानी समझा सकते थे और नेतृत्व या किसी पद की चाह करने-वाले आदमी के व्यक्तिगत गुणों को खुद देखकर नागरिक अपनी राय बना सकते थे। शहरी राज्य छोटे-छोटे होते थे, क्योंकि ऐसे राज्यों में ही मनुष्यों का सामाजिक जीवन सम्भव था। अफलातूं कहता कि 'व्यक्तिगत जीवन के निकटतम पहुचनेवाला राज्य ही आदर्श राज्य हो सकता है। शरीर के किसी अंग को चोट पहुंचती है तो सारे शरीर को दर्द होता है और चोट वाले भाग के साथ वह सह-अनुभूति करता है। समाज में यह तभी सम्भव होगा जब वह छोटी-छोटी और एकसे विचार व भावना-वाली इकाइयों में बंट जायगा। यूनानियों के लिए शहर इस प्रकार का एक सम्मिलित जीवन-सा था। उसका शासन-विधान एक कानूनी संगठन के बजाय केवल जीवन की पद्धति का निदर्शक मात्र था।

मेरा मतलब यह नहीं कि यूनान के ये राज्य पूर्ण थे। उनके भी अपने दोष और अपूर्णतायें थी हीं। उदाहरणार्थ उनमें प्रचलित गुलामी की प्रथा को कौन अच्छा कहेगा? पर हमें यह मजूर करना होगा कि इस शान्त और हिलेमिले जीवन के कारण ही वे और खासकर अथेन्स शहर यूरोप के चिन्तन और संस्कृति की विकास-शाला बन सका! प्रो० डिलाइल बर्न्स ने ठीक ही कहा है कि "अथेन्स का जीवन और स्वतन्त्रता उत्पादक थे। कवि, कलाकार और दार्शनिक वगैरा जितने हम अथेन्स के इतिहास में पाते हैं उतने दूसरे किसी शहर के इतिहास में हमें नहीं मिलते। स्थापत्य, मूर्तिकला, नाटक और दर्शन के क्षेत्रों में अथेन्स ने इतने थोडे समय में

जितनी प्रगति की, उतनी दूसरे किसी शहर ने नही की है ।"[1]

हिन्दुस्तान के ग्रामीण जनतन्त्र

औद्योगिक क्रान्ति के पहले विभिन्न यूरोपीय देशो के गावों में स्थानीय स्वशासन जारी था । प्रिन्स क्रोपाटकिन ने अपनी "म्यूच्युअल एड" नामक किताब में इसका बड़ा अच्छा वर्णन किया है । चीन और जापान भी ऐसे विकेन्द्रित ग्रामीण सङ्गठनो के प्राचीनतम घर रहे हैं । परन्तु हम इस बात पर गर्व कर सकते हैं कि ससार के समस्त देशो में केवल हिन्दुस्तान ही एक ऐसा देश है जहा स्थानीय स्वशासन का विकास "सबसे पहले हुआ और सबसे अधिक दीर्घकाल तक उसकी रक्षा की गई ।"[2] ग्राम-संस्थाये हमारे देश में अज्ञात काल से रही हैं । कहा जाता है कि राजा पृथु ने गङ्गा-जमुना के प्रदेश में अपने उपनिवेश कायम करते हुए सबसे पहले इनकी स्थापना की । महाभारत के शान्ति-पर्व और मनुस्मृति में अनेक स्थानो पर ग्राम-संघों का जिक्र आता है । कौटिल्य के, जो ईसा के पहले चौथी सदी में जीवित थे, अर्थ-शास्त्र में भी इन ग्राम-सघों का वर्णन मिलता है । वाल्मीकि रामायण मे जन-पदों का जिक्र है । यह शायद बहुत से ग्राम-राज्यो का संघ होगा । यह तो निश्चित है कि यूनानियो ने इस देश पर जब आक्रमण किया तब यह पद्धति इस देश मे व्यापक रूप से प्रचलित थी । मेगस्थनीज इन पेंचायतों अर्थात् पचायतों के बडे विशय सस्मरण छोड़ गया है । चीनी-प्रवासी हुएन्सैंग और फाहियान लिखते हैं कि वे जब हिन्दुस्तान में आये थे, तब यह देश बड़ा खुशहाल था । लोग इतने सुखी और समृद्ध थे कि जिसकी तुलना नहीं मिल सकती । शुक्राचार्य के नीतिसार में सातवीं सदी के ग्रामीण-सघ का वर्णन मिलता है ।

वास्तव में हिन्दुस्तान में ठेठ वैदिक काल से गाव शासन की व्यवस्था रहे हैं । ऋग्वेद में (०˙६२।११;१०७˙५) ग्रामणी अर्थात्

१ पोलिटिकल आइडियल्स—पृ० ४१

२ एकोनॉमिक हिस्टरी ऑफ इंडिया—रमेशचन्द्र दत्त

ग्राम-नेता का जिक्र है। जातकों में भी ग्राम-सभाओं का वर्णन आया है। व्यापारियों के संघों को आमतौर पर श्रेणी कहा जाता था। वैदिक काल के बाद भी गाव संघ-जीवन की राजनैतिक इकाइया रहे हैं। विष्णु-पुराण और मनुस्मृति में राज्य के सङ्गठन में गाव सबसे छोटी—प्राथमिक इकाई माने जाते थे।[१] धर्म-सूत्र और धर्म-शास्त्रों में गण और पूगों का बार-बार जिक्र आया है। शायद इन दोनों शब्दों को ग्राम या नगर-संस्थाओं के अर्थों में प्रयुक्त किया गया है। स्थान-स्थान पर मिलने वाले अनेक प्राचीन शिलालेखों के रूप में पुरातत्व भी इन स्वशासित स्थानीय संस्थाओं के अस्तित्व का समर्थन करता है।

हिन्दुस्तान के ग्राम-राज्य हिन्दू, मुसलमान और पेशवा राजाओं के समय तक—अर्थात् ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आगमन के पहले तक बराबर कायम थे। राजवंशों के विनाश और साम्राज्यों के पतनों का उनपर कोई असर नहीं हुआ। देश में जब-जब राजनैतिक तूफान आते, तब राष्ट्र की संस्कृति के लिए स्थानीय स्वशासन की ये विकसित संस्थाये कछुए की ढाल का काम देती थीं, जहा वह शान्तिपूर्वक अपनी रक्षा कर लिया करती थी।[२] राजा लोग इन ग्राम-संस्थाओं से केवल जमीन का लगान मात्र ले लिया करते थे। स्थानीय शासन में वे किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करते थे। जैसा कि सर चार्ल्स ट्रेवलिंग ने कहा है "हिन्दुस्तान पर एक के बाद एक विदेशी आक्रमण हुए, पर ये ग्राम-संस्थायें कुश और तृण की भाति जमीन में अपनी जड़ें जमाये ही रहीं।" सर जॉर्ज बर्ड वुड ने कहा है, "हिन्दुस्तान में दूसरे किसी भी देश की अपेक्षा कहीं ज्यादा धार्मिक और राजनैतिक क्रान्तियां हुई हैं। परन्तु ये ग्राम-संस्थायें अपने पूरे जोर के साथ सारे देश में बराबर नगर-पालक का अपना काम करती रहीं। यहा पहाड़ों को लाघकर सीथियन, यूनानी, सारासेन, अफगान और मुगल भी आये। मराठे भी सारे देश में फैल

१ कारपोरेट लाइफ इन एन्शियन्ट इंडिया—र० च० मजूमदार पृ० १४१
२ लोकल गवर्नमेंट इन एन्शियन्ट इंडिया—डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी पृ० १०

गये उधर समुद्र मार्ग से पुर्चगीज, डच, अंग्रेज, फ्रेंच तथा डेन्स आये और इस देश पर उन्होने अपने राज्य कायम किये। परन्तु जिस तरह समुद्र के ज्वारो का किनारे की चट्टानों पर कोई असर नहीं होता, उसी प्रकार इस देश की इन धार्मिक ग्राम-सस्थाओ पर इनके आने और जाने का कोई असर नहीं हुआ।[1] सन् १८३० में सर चार्ल्स मेटकाफ ने—जो उस समय हिन्दुस्तान के गवर्नर जनरल थे, अपनी प्रसिद्ध याद्दाश्त में लिखा हैः—

"यहा की ग्राम-सस्थाये छोटे-छोटे जनतन्त्र हैं। अपनी जरूरत की लगभग हर चीज उनके अपने पास होती है और बाहरी ताल्लुकात से वे प्रायः स्वतन्त्र होती हैं। और सब चीजे नष्ट हो जाती हैं पर वे कायम हैं। राजवश एक के बाद एक गुजर जाते हैं। क्रान्तिया आती हैं और चली जाती हैं। पर ग्राम-संस्थाये बराबर ज्यो-की-त्यो काम करती रहती हैं। ग्राम-संस्थाओं का यह सघ, जो कि खुद एक स्वतन्त्र-राज्य होता है, उन तमाम बड़ी-बड़ी क्रान्तियों, विप्लवों और उथल-पुथलों में हिन्दुस्तान की जनता की रक्षा तथा उन्हें सुखी रखने में एव उनकी स्वतन्त्रता को बनाये रखने में सबसे बड़ा कारण रहा है, इसलिए मैं चाहता हूं कि इस ग्राम-शासन में जरा भी खलल न पहुचाया जाय। और ऐसी हर चीज से मैं भय खाता हू जिससे इनके टूटने का अन्देशा होता है।"[2]

पर दैव की इच्छा कुछ और ही थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अत्यधिक लोभों ने इन ग्राम पचायतों को तोड़ दिया। लगान वसूली की इकाई पहले ग्राम थे। उनके स्थान पर जबरदस्ती और बुद्धि पूर्वक रैयतवारी पद्धति शुरू करने का असर इन ग्राम-सस्थाओं के जीवन पर बड़ा घातक सिद्ध हुआ। नौकरशाही ने तमाम बन्दोबस्ती और न्याय-प्रदान का काम का सीधे अपने हाथों पूरी तरह से ले लिया इस कारण गांव के अधिकारियों के हाथों में जो सत्ता और प्रभाव था वह छिन गया।

१ इंडस्ट्रियल आर्ट्स आफ इंडिया—पृ० ३२०

२ रिपोर्ट, सिलेक्ट कमिटी—आफ हाउस आफ कामंस (१८३२)

सर हेनरी मेन अपनी पुस्तक "विलेज कम्यूनिटीज इन दि ईस्ट एण्ड वेस्ट" में लिखते हैं कि हिन्दुस्तान की ग्राम-पचायत एक मरी हुई नहीं बल्कि जिन्दा सस्था था । वेडन पॉवेल ने "इन्डिया-विलेज कम्यूनिटी" में भी इन ग्राम-सस्थाओ का विस्तृत वर्णन किया है । प्रोफेसर अलतेकर की "हिस्टरी ऑफ विलेज कम्यूनिटीज इन वेस्टर्न इण्डिया" में हमारे देश की इन ग्राम-संस्थाओं के कार्य-संचालन का बडा अच्छा चित्र है । परन्तु इस विषय का सबसे उत्तम विवेचन तो डा० राधाकुमुद मुकर्जी की 'लोकल गवर्नमेंट इन एन्शियन्ट इन्डिया और डॉ० राधाकमल मुकर्जी की 'डेमक्रेसीज आफ दी ईस्ट' में किया गया है ।

हिन्दुस्तान की इन ग्रामीण राज्य संस्थाओं के शासन सचालन वगैरा की तफसील में जाना इस पुस्तिका में सभव नहीं है । यहा तो इतना ही कह देना काफी होगा कि इस देश में अग्रेजी राज की स्थापना के जो बुरे से बुरे परिणाम हुए हैं उनमें एक इन स्वशासन ग्राम-सस्थाओं का नष्ट किया जाना भी है । अग्रेजों ने अपने ढग की स्थानीय स्वराज्य सस्थाओं को खडी करने का यत्न भी जरूर किया है । परन्तु वह विदेशी है हिन्दुस्तानी पद्धति पर नही । इसीलिए वह बुरी तरह असफल हुए हैं । जैसा कि डा० एनी बीसेन्ट ने कहा है "अधिकारियो ने उसे नाम तो हिन्दुस्तानी ही दे रक्खा है , परतु जहा पुरानी पचायतो का चुनाव गाव के निवासी करते थे और उन्हींके प्रति ये पचायते ज़िम्मेवार भी रहती थीं, अब इन पचायतों के अधिकारी सरकारी अफसरों के प्रति वहा अपने आपको जिम्मेवार समझते हैं और इसलिए पच पहले की भाति गाव के लोगों को नहीं बल्कि इन अफसरों को खुश करने का प्रयत्न करते हैं।"[२]

इन ग्राम-सस्थाओं में कुछ खामिया थीं । फिर भी सच्ची लोकशाही

१ डा बी० के० सरकार अपने 'पोलिटिकल इंस्टिट्यूशन्स एण्ड थियरीज' मे लिखते हैं कि ग्राम-संस्थाओं का नाम ग्राम पंचायत तो मध्य युग में पडा है ।

२ इंडिया बॉण्ड ऑर फ्री—पृ० २६

और स्वशासन की दिशा में हिन्दुस्तान के ये ग्रामीण जनतन्त्र बड़े आश्चर्य जनक प्रयोग थे। आजकल के जमाने में संचालन में जो केन्द्रीकरण हो गया है उसने स्थानीय संघ-जीवन के विकास के लिए बहुत कम अवकाश छोड़ा है। इससे राजनीति सर्वत्र वन्ध्या और यन्त्रवत् जड़ बन गई है। फिर व्यक्ति और समाज अथवा शासन के हितों के बीच अनंत और निरन्तर संघर्ष चलता रहता है। परन्तु हिन्दुस्तान की ग्राम-पंचायतों ने इन परस्पर विरोधी हितों का समन्वय कर लिया था और सामाजिक तथा राजनैतिक जीवन को उत्पादक एवं सफल बना दिया था। जैसा कि आचार्य विनोबा भावे ने कहा है—इन ग्राम सभाओं में हर आदमी अपना राजा होता था, फिर भी वह अपने अन्य नागरिक साथियों के साथ अटूट बन्धनों में बंधा रहता था।[1] एक तरफ तो उसमें व्यक्तित्व के विकास के लिए पूरा अवकाश था, हर नागरिक उस छोटे से राज्य का एक जिम्मेवार और उपयोगी

एक पाई खर्च करनी पड़ती और न चुनाव के लिए कोई प्रचार करना पड़ता। फिर प्रत्येक क्षेत्र स्वतन्त्र और स्वशासित था और सत्ता एक जगह केन्द्रित नहीं थी। काम की भीड़ भी ऐसी नहीं होती थी। इस प्रकार हिन्दुस्तान के पुराने जनतन्त्रों का शासन प्रत्यक्ष और सीधा होता था। उनमें कुव्वत और मर्दानगी होती और साथ ही वे विधायक, उत्पादक और अहिंसक भी होते थे। इसके विपरीत आज के मौजूदा जनतन्त्रों का ढांचा टेढ़ा-मेढ़ा, सुस्त, निषेधात्मक, अनुत्पादक और हिंसक है। इसलिए यह आवश्यक है कि हम अपनी स्वदेशी संस्थाओं को पुनः संजीवित करें और उन्हें भावी स्वराज्य के शासन-विधान का आधार बनावें। जैसा कि डॉ० राधाकमल मुकर्जी कहते हैं और ठीक कहते हैं—हिन्दुस्तानी पद्धति के विकेन्द्रित जनतन्त्र पश्चिम की राजनैतिक पद्धतियों की नकलों की अपेक्षा न केवल अधिक मुआफिक और जीवनदायी होंगे बल्कि मनुष्य जाति के राजनैतिक इतिहास में, जो कि पश्चिम की आक्रमणशील हुकूमतों और साम्राज्यवादी सत्ताओं के उलझन भरे विचित्र कारनामों से भरा पड़ा है, पूर्व की ओर से एक नई देन के रूप में होंगे।

डॉ० मुकर्जी आगे लिखते हैं—

"वह एक नये प्रकार की शासन-पद्धति के लिए बुनियाद का काम देंगे। रोमन-ट्यूटॉनिक ढंग के केन्द्रीकरण-प्रधान शासन-विधान की अपेक्षा छोटे छोटे क्षेत्रों में विविध काम करनेवाली विभिन्न संस्थाओं की प्रवृत्तियों का समन्वय करके यह पद्धति भावी शासन-विधान का ढांचा पार्लामेंटरी विधान की अपेक्षा भी अधिक सन्तोषजनक ढंग से बना सकेगी। और अगर एशिया-वासियों की बौद्धिक और नैतिक एकता इसी तरह कायम रही तो पूर्व एशिया के जातीय और समन्वय पद्धति पर काम करनेवाली बुद्धि द्वारा बनाई रचनायें सामाजिक और राजनैतिक प्रयोगों के इस क्षेत्र के लिए नई, बेश कीमती एवं महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रदान करेंगी। आज तो सारी मनुष्य-जाति यन्त्र के समान जड़ एवं शोषण-प्रधान राजसंस्था की हुकूमत के मातहत संस्थागत (अनुशासन

की) जड़ता (नाकायदगी) मे कैद पड़ी है। अतः आज अगर सबसे अधिक किसी वस्तु की ज़रूरत है तो इस बात की कि समाज के लिए शासन-विधान का कोई नया सिद्धान्त हो, जो मनुष्य मे नया चैतन्य उत्पन्न करके, उसे स्वाभाविक और लचीले दलों से सम्बन्धित कर दे ताकि वह अपनी देनों और सहज बुद्धि को आजादी के साथ प्रकट और विकसित कर सके।"[1]

विकेन्द्रीकरण का अर्थशास्त्र

ग्रामीण साम्यवाद में जो बहुतसी अच्छाइया छिपी पड़ी हैं, उनके अलावा विकेन्द्रित ग्रामीण संघ-राज्यों का संगठन संपत्ति के न्यायपूर्ण बंटवारे में अत्यन्त सहायक सिद्ध होगा। आज के पूंजीवादी समाज में उत्पादन के साधनों पर मालदारों का अधिकार रहता है। अतः यह समाज संसार में स्थायी शान्ति एवं सच्ची समृद्धि को लाने में असफल ही रहा है। दूसरी तरफ समाजवाद ने इस मालदार वर्ग को निर्दयता के साथ जड़ से उखाड़कर फेंक दिया है। बेशक उसने जनता की रहन-सहन को ऊंचा उठाकर बेहतर कर दिया है। परन्तु फिर भी सोवियट कम्यूनिज्म एकदम विशुद्ध भलाई नहीं है। उसने संयोजन के महान और शक्तिशाली यन्त्र के द्वारा व्यक्तियों को न्यूनाधिक परिमाण में शून्यवत् तथा जानदार यन्त्रों की श्रेणी मे लाकर छोड़ दिया है। इसके अलावा रूस ने अब पास पड़ौस के देशों पर भी अपने पर फैलाना शुरू कर दिया है। उसका उद्देश चाहे कितना ही उच्च हो, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में रूस के इन कार्यों को कोई निःशङ्क भाव से नहीं देख सकता। साम्राज्यवाद चाहे वह पूंजीवादी हो या समाजवादी—हम उसे बर्दाश्त नहीं कर सकते। समाजवाद जब बड़े पैमाने पर और केन्द्रीकरण वाला होता है तो

तब हमारी समस्या का हल क्या होगा ? विकेन्द्रित गृह-उद्योग की पद्धति में यह हल छिपा हुआ है। हिन्दुस्तान की ग्राम-संस्थाओं में एक अत्यन्त सतुलित आर्थिक पद्धति का विकास हम देखते हैं। एक तरफ सत्ता का सम्पूर्ण केन्द्रीकरण और दूसरी तरफ—किसी प्रकार भी हस्तक्षेप न करना—इन दोनों सिरों को उसमें छोड दिया गया है। अनेक और गम्भीर प्रयोगों के बाद पूंजीवाद और साम्यवाद के बीच का सुन्दर मध्यम-मार्ग उन्होंने ढूंढ लिया था। उन्होंने सहकारी उद्योग और सहकारी खेती का एक आदर्श तरीक़ा ढूंढ लिया था जिसमें अमीरों द्वारा ग़रीबों के शोषण की शायद ही कहीं गुञ्जाइश हो। जैसा कि गांधीजी ने कहा है—वितरण और उपयोग के क़रीब-क़रीब साथ-साथ ही उत्पादन होता था। झोंपडों और घरेलू कारखानों में चीजें बनतीं और वे किसी दूर के बाजार के लिए नहीं बल्कि स्थानीय जरूरतों की तत्काल पूर्ति के लिए होती थीं। स्वावलम्बन के सिद्धान्त पर जब चीजें छोटे पैमाने पर अपने-अपने क्षेत्रों में ही बन जातीं तो उसमें पूंजीवादी शोषण के लिए कहीं स्थान ही नहीं रहता था। व्यक्तियों की स्वतन्त्रता को निर्दयता के साथ बग़ैर दबाये और साथ ही मुट्ठी भर आदमियों को दूसरों पर अपनी हुकूमत स्थापित करने का बग़ैर मौका दिये इस पद्धति से अपने आप आर्थिक समानता की स्थापना हो जाती थी। कहने की ज़रूरत नहीं कि गांधीजी के सिद्धान्तों के अनुसार इन गृहोद्योगों का संगठन पूंजीवादी पद्धति पर नहीं, बल्कि सहकार की पद्धति पर ही हो सकता है। क्योंकि जापान की भांति इन गृहोद्योगों पर अगर पूंजीपतियों का नियन्त्रण होगा, तो देहात के कारीगर भी निरे मज़दूर बना दिये जावेंगे और उनका शोषण होता रहेगा।

प्राचीन ग्राम-संस्थाओं में कुछ दोष भी थे। उदाहरणार्थ जाति-भेद की कठोर दुखदायी प्रथा को ही लीजिए, जिसने समाज में अनुचित भेद-भाव खड़े कर दिये। पुराने ज़माने में भी कुछ धनवान सेठ थे। इन ग्राम-संस्थाओं के बीच आर्थिक एवं राजनैतिक विषयों में कोई पारस्परिक सम्बन्ध और सामञ्जस्य नहीं था। उनकी रहन-सहन भी शायद इतनी

ऊची नहीं थी जो हमे आकर्षित कर सके। फिर भी ये ग्रामीण जनतत्र हमारे परिपक्व विचार और चिंतन के परिणाम थे और उनमे आर्गिक सगठन के वे तत्त्व मौजूद हैं, जिनको अगर ठीक तरह से बुन दिया जाय तो आज इस युद्ध पीड़ित ससार में जो अनत समस्याये हमे दिन-रात परेशान कर रही हैं उनसे वे हमें राहत दिला सकते हैं।

विकेन्द्रीकरण का यह अर्थशास्त्र हमें अत्यधिक यन्त्रीकरण की बुराइयों से भी बचा सकता है। कार्ल मार्क्स खुद कहता है कि यत्रो के व्यापक उपयोग और श्रम-विभाग के कारण काम के अदर से मजूदरों के व्यक्ति का महत्त्व तो सपूर्णतया गायब हो गया है। और इसलिए मजदूर के दिल के अन्दर से काम का आकर्षण भी चला गया। वह तो यंत्र का एक पुर्जा मात्र रह गया है।' .....आज यत्रों से उत्पादन करने की इस पद्धति में मनुष्य एक तरफ पशु और दूसरी तरफ राक्षस बन गया है।" दूसरी तरफ "एक स्वतत्र किसान या कारीगर अपने ज्ञान, बुद्धि और इच्छा का विकास कर सकता है।"[२] यंत्रों की सहायता से बडे पैमाने पर किये गये उत्पादन मे क्या-क्या खराबियाँ हैं इनका पता कार्ल मार्क्स को था। पर उसे आशा थी कि समाजवादी शासन में ये बुराइया नही रह पाएंगी। परन्तु जान-बूझकर दाखिल किया गया यंत्रवाद, चाहे वह पूजीवादी समाज में हो या समाजवादी समाज में, मनुष्य के शरीर, बुद्धि और नैतिक जीवन पर बुरा असर डाले बगैर रही कैसे सकता है? प्रो॰ वारसोड़ी लिखते हैं कि उत्पादन के और वितरण के साधनो पर से व्यक्तियों का स्वामित्व उठा देने से शोषण तो मिट गया; पर इतने भर से बुराई की जड़ तो नहीं हटी। कारखानों की पद्धति में खुद कुछ ऐसी बुराइया हैं, जो कभी हट नहीं सकतीं। वे तो समाज को तकलीफ देती ही रहेंगी।[३] इसीलिए गाधीजी आधुनिक उद्योगीकरण के खिलाफ

१ 'दी कम्यूनिस्ट मेनिफेस्टो'।

२ 'डास केपिटल'।

३ 'दिस अगली सिविलिजेशन'।

है। पर इस पर से यह खयाल करना गलत होगा कि वह यंत्र मात्र के विरोधी हैं। वह तो यंत्रों के अत्यधिक और अविचारपूर्ण विस्तार-प्रचार के विरोधी है। वह लिखते हैं :—

"जहा काम करनेवाले आदमियों की कमी हो वहा यंत्रों से काम लेना अच्छा है। परंतु जहा भारत की तरह काम करने के लिए आवश्यकता से अधिक आदमी हों, वहा हर काम यंत्र से लेना बुरा है।"[1]

आज यंत्रों ने मनुष्यों को शून्य या अपने ही समान पर जानदार यंत्र बना दिया है। बड़े-बडे कारखानों में जहा राक्षसी यंत्र दिन-रात शोर मचाते हुए चलते रहते हैं मनुष्य का व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है। पर यंत्र अगर छोटे-छोटे हों और वे लाखों करोड़ों किसानों और कारीगरों के श्रम को हलका कर सकते हों और अच्छी तरह से काम कर उनका फायदा कर सकते हों तो गांधीजी उनका निःसंदेह स्वागत ही करेंगे।

बेकारी को दूर करने की दृष्टि से भी गृहोद्योगों का बढ़ाना अत्यन्त लाभदायक है। आज पश्चिम के आर्थिक संयोजन का सब से ताजा नारा है—"सबको काम दो।" पर क्या यंत्रों की सहायता से बडे पैमाने पर उत्पादन करने से सबको काम मिल भी सकता है? संयुक्त राज्य और संयुक्त राष्ट्र (अमेरिका) जैसे देशों में खूब यंत्रों का प्रचार है। परतु फिर भी वहा लाखों आदमी बेकार हैं। उन्हें काम नहीं दे पाये हैं। तब क्या हम चालीस करोड़ आबादीवाले यह उम्मीद कर सकते हैं कि यहा की बेकारी की समस्या को हम हल कर सकेंगे? इस समय देश में जितने बड़े-बडे भारी भरकम कारखाने और मिले हैं उनमें सब मिलाकर कुल बीस लाख मनुष्य काम करते हैं। बम्बई-योजना के अनुसार अगर भारी-भारी कारखानों को प्रोत्साहन देकर, मान लीजिए, उनकी सख्या पाच गुनी हो गई तो भी एक करोड़ आदमियों से अधिक को हम काम नहीं दे सकेंगे। फिर औरों का क्या होगा? हिन्दुस्तान में खुद किसान के पास भी तो काफी काम नहीं होता। अपनी नाकाफी आमदनी को बढ़ाने के लिए

[1] हरिजन—१६-११-१९३४

खुद उसे किसी सहायक उद्योग की जबरदस्त ज़रूरत है। इसलिए हमारी समस्या का सब से अच्छा हल तो यही है कि गृहोद्योगों को खूब बढ़ाया जाय। थोडे से कारखानों मे ढेरो माल पैदा किया जाय इसके बजाय जरूरत इस बात की है कि हिन्दुस्तान के असख्य गावों की जनता सुसगठितरूप से उत्पादन करे। हा, आधुनिक आर्थिक सयोजन की सफलता के लिए कुछ भारी-भारी और देश के प्राणरूप कारखानों की अवश्य जरूरत होगी। परन्तु गाधीजी की यह निश्चित राय है कि इन कारखानों पर देश—राज्य—का ही स्वामित्व और संचालन होगा।

कोई यह आशका न करे कि हमारे ये गृहोद्योग आर्थिक दृष्टि से लाभदायक नहीं होंगे। हमारे ज़माने का एक सब से बड़ा उद्योग-पति हेनरी फोर्ड कहता है—आम तौर पर एक बहुत बड़ा यन्त्र हमेशा फायदे-मन्द नहीं होता।' इसलिए पैदावार की विधियों को केन्द्रित करने से कोई लाभ नहीं। हेनरी फोर्ड कहता है कि "जो चीज सारे देश में बरती जाती है वह सारे देश में बनाई भी जानी चाहिए" इससे उसका लाने-ले जाने खर्च घट जावेगा और जनता की क्रय-शक्ति समानरूप से सर्वत्र बढती रहेगी। अब फोर्ड का अगला आदर्श यह है कि उद्योगों को पूरी तरह से जगह-जगह बाट दिया जाय। इस पद्धति मे यन्त्र छोटे-छोटे होंगे और उनको ऐसी जगह रक्खा जायगा कि उनमें काम करनेवाले किसान भी होंगे और साथ-साथ उद्योगपति भी। इससे व्यक्तियों की स्वतन्त्रता तो आमतौर पर बढ़ेगी ही पर इसके साथ-साथ जोड़े और खाने-पीने की

नदियों के प्रवाहों को रोक कर काफी बिजली पैदा की जा सकती है, बड़े-बड़े शहरों में राक्षसी कारखानों की संख्या बढ़ाने की ज़रा भी ज़रूरत नहीं।

समाज के इस पूंजीवादी संगठन ने और उसके केन्द्रित तथा अत्यधिक उत्पादन ने संसार को कितनी बार खूनी और बरबादी फैलानेवाले युद्धों में 'झोंक दिया है। क्या बड़े पैमाने पर होनेवाले केन्द्रित उत्पादन के परिणामों और कीमत में धन और जन की इस दुखदाई हानि को शरीक करना अनुचित होगा? सचमुच यह प्रत्यक्ष बरबादी इतनी जबरदस्त है कि हम यन्त्रों के द्वारा केन्द्रित रूप से बड़े पैमाने पर किये जानेवाले उत्पादन को किसी प्रकार आर्थिक दृष्टि से भी लाभदायक नहीं कह सकते। खैर।

'गान्धीवादी योजना' में खूब विस्तार से विकेन्द्रीकरण के अर्थशास्त्र की मैंने चर्चा की है इसलिए इस पुस्तिका में उसका अधिक विस्तार करना उचित नहीं होगा।

विकेन्द्रीकरण का दर्शन

खूब समझ लेने की बात है कि विकेन्द्रीकरण की हिमायत गांधीजी क्यों करते हैं? केवल इसलिए नहीं कि उससे राजनैतिक और आर्थिक लाभ है। नहीं। वह तो उनके सामने सादा जीवन और उच्च विचार का सांस्कृतिक और आध्यात्मिक आदर्श उपस्थित कर देता है। वह कहते हैं हमारा मन बड़ा असन्तोषी है। एक चीज़ मिली नहीं, कि दूसरी की चाह वहां तैयार है। इस तरह उसकी तृष्णा बढ़ती ही रहती है। अपने विकारों की तृप्ति का हम ज्यों-ज्यों प्रयत्न करते हैं, त्यों-त्यो वे बेलगाम होते जाते हैं। इसीलिए हमारे पूर्वजों ने भोग का संयम करने का आदेश दिया! उन्होंने देखा कि सुख का सम्बन्ध खास तौर पर मन से है। और सच्चा सुख और स्वास्थ्य अपने हाथ पैरों से सही-सही प्रकार का काम लेने से ही मिल सकता है।[1] इसलिए गांधीजी सांस्कृतिक और नैतिक दृष्टि से

[1] हिन्द स्वराज्य—पृ० ८७-८८

भी सादगी को आवश्यक मानते हैं। विख्यात विज्ञान-शास्त्री आइन्स्टिन की भी यही राय है—

"सम्पत्ति, बाहरी सफलता, प्रचार, ऐशो-आराम ये सब मेरे नजदीक घृणा की वस्तुएं रही हैं। मेरा विश्वास है कि सादा और निश्छल जीवन हर आदमी के शरीर और मन दोनों के लिए सबसे अधिक लाभदायक होता है।'[1]

पर सादगी के मानी यह नहीं कि हर आदमी स्वेच्छापूर्वक गरीबी का अंगीकार करे और लंगोटी पहनकर रहे। गांधीजी की 'जरूरतों' और कम-से-कम सुख-सुविधा का पैमाना काफी ऊंचा है। पर हां, उनके "अच्छे जीवन" में ऐश के लिए गुञ्जाइश नहीं है। उन्हें रहन-सहन का नहीं "प्रत्यक्ष जीवन का" पैमाना ऊंचा करने का सबसे अधिक ध्यान रहता है।

सादगी के साथ साथ चांदी-सोने की अपेक्षा मानवी मूल्यों का विचार भी वह करते हैं। उन्हें तो सब से अधिक खयाल मानवता का है। अथवा जैसा कि प्रोटोगोरस ने कहा था—"वही सबका मानदण्ड है।" सिक्कों की अपेक्षा उनके अर्थशास्त्र का आधार प्रत्यक्ष जीवन है। खादी और ग्रामोद्योगों की हलचलों के पीछे देश की सामाजिक और आर्थिक पुनर्रचना में मनुष्य-जीवन को सर्व प्रधान स्थान देने का यह खयाल वैचारिक पृष्ठ-भूमि के रूप में सदा उनके दिमाग में रहता है। "खादी-भावना का अर्थ है पृथ्वीतल के प्रत्येक मनुष्य के साथ बन्धुभाव।"[2] हिन्दुस्तान की पुरानी ग्राम-संस्थाओं की सहकार-भावना की जड़ में यही नैतिक तत्त्व था। आज के दुनियादार के लिए तो सोने से बड़ा ईश्वर संसार में कोई है ही नहीं। पर गांधीजी तो 'आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्' (अर्थात् आत्मा को छोड़कर तो समस्त पृथ्वी तल की संपत्ति की परवा न करो) की सलाह देनेवालों में से हैं। जिस विकेन्द्रीकरण के दर्शन का प्रतिपादन गांधीजी करते हैं, उसमें दूसरी बुनियादी कल्पना शरीर-श्रम

१ 'आई बिलीव'—पृ० ७०

२ यंग इण्डिया—२२-६-२७

का पावित्र्य है। "यह सबसे बड़े दुर्दैव की बात है कि करोड़ों लोगों ने अपने हाथों का हाथों की तरह उपयोग करना छोड़ दिया है।"[1] "हमारा शरीर एक जीता जागता अप्रतिम यन्त्र है। उसके स्थान पर निर्जीव यन्त्रों से काम लेकर हम उसे निकम्मा बना रहे हैं और जान बूझ कर नष्ट कर रहे हैं।"[2] गांधीजी की दृष्टि से शरीर-श्रम प्रत्यक्ष जीवन है। वह अभिशाप नहीं, वरदान है।

ज़रा सोचिए तो आप देखेंगे कि सादगी, मानव-जीवन का खयाल और शरीर-श्रम की पवित्रता वाले आदर्शों की जड में अहिंसा है। और यही गांधीवाद का मुख्य आधार है। वह कहते हैं–"अहिंसा पर आधारित जीवन की जब मैं कल्पना करने लगा तो मैंने देखा कि हमें उच्च विचार का ध्यान रखते हुए उसे जितना भी संभव हो सादा बना देना चाहिए। अहिंसा के आधार पर बनाया हुआ समाज गांवों में रहेगा। उसके छोटे छोटे दल होंगे, जिनका जीवन शान्त और सम्मानपूर्ण होगा और वे स्वेच्छा पूर्वक पारस्परिक सहयोग से रहेंगे। ....अहिंसा पर आधारित ऐसी सभ्यता के निकटतम जीवन की कल्पना हिन्दुस्तान के पुराने ग्रामीण गणराज्य हमें देते हैं। मैं मानता हू कि उसमें संशोधन की गुंजाइश है। मैं यह भी जानता हूं कि अहिंसा की जो कल्पना और परिभाषा मेरे दिमाग में है, वह उसमें नहीं थी। पर उसमें इसके बीज ज़रूर थे।"[3] इसलिए गांधीजी ग्रामों पर आधारित सभ्यता पर इतना अधिक जोर देते हैं। "ग्राम-सभ्यता की जो कल्पना मेरे दिमाग़ में है उसमें शोषण का नामोनिशान नहीं। और यही (शोषण) तो हिंसा की जड़ है।"[4]

गांधीजी के विचार में "सबसे बड़ी शक्ति अहिंसा" है। वही "जीवन का सर्वश्रेष्ठ धर्म है"। जिस प्रकार गुरुत्वाकर्षण के आधार पर पृथ्वी टिकी हुई है, उसी प्रकार सारे मानव-समाज का व्यवहार अहिंसा

१ 'यंग इण्डिया' १७-२-२७, २ 'यंग इण्डिया' १८-१-२५
३ 'हरिजन' १३-१-४०, ४ 'हरिजन' ११-२-३६

पर चल रहा है।[1] अथवा जैसा कि टी॰ एच॰ ग्रीन ने कहा है—"राज्य का आधार 'बल' नहीं 'इच्छा' है।[2] हिंसा की व्यर्थता को पिछले दो सामाजिक महायुद्धों ने पूरी तरह प्रकट कर दिया है। और जैसा कि हाल ही में राष्ट्रपति ट्रूमन ने कहा है अब तीसरे महायुद्ध के बाद सभ्यता जिन्दा नहीं बचनेवाली है। विज्ञान की अत्यधिक प्रगति ने संसार को अब ऐसे ही मुकाम पर लाकर खड़ा कर दिया है। आज संसार के सामने प्रश्न हिंसा और अहिंसा के बीच चुनाव का नहीं, बल्कि हिंसा और विज्ञान के बीच चुनाव का है। हम दोनों को एक साथ ग्रहण नहीं कर सकते। परमाणु बम इस कथन का प्रत्यक्ष प्रमाण है। हिंसाभिमुख विज्ञान का यह तर्क-संगत परिणाम है। यह भी अफवाह है कि अमेरिका ने एक और ऐसे बम का आविष्कार किया है, जिसके मुकाबले में वर्तमान परमाणु बम केवल आतिशबाजी-सा है।[3] इसलिए सभ्यता और मनुष्य-जीवन के नाम पर अब हमारे सामने सिवा इसके कोई रास्ता नहीं रह गया है कि संसार 'हिंसा' को नमस्कार कर ले। परमाणु बम से संसार को नष्ट करने के बजाय अब हमें एक परमाणु के अन्दर समस्त विश्व का दर्शन करने का यत्न करना चाहिए। अगर यह दृष्टि हम ग्रहण नहीं करेंगे, तो संसार का विनाश निश्चित है।

समाज-विज्ञान का दृष्टिकोण

समाज-विज्ञान की दृष्टि से भी विकेन्द्रित ग्रामीण-समाज की रचना की ज़रूरत है। आजकल के शहर अत्यधिक घने हो गये हैं। [illegible] स्वास्थ्य और स्वच्छता की दृष्टि से भी स्वास्थ्यप्रद ग्रामीण जीवन की

तरफ हमें झुकना चाहिए। शहरी जीवन के शोर और जल्दबाजी का हमारी स्नायु प्रणाली पर भी धीरे-धीरे परन्तु निश्चित रूप से बहुत बुरा असर पड़ता है और शरीर तथा मन दोनों को ये हानि पहुचा रहे हैं। फलतः समाज निष्प्राण और यन्त्रवत् जड़ हो रहा है। ग्रामों, खेतों, घरेलू कारखानों और दूकानों का शान्त और स्वास्थ्यप्रद श्रम हमारे समाज में निःसन्देह आनन्द और उत्साह को बढ़ानेवाला होगा।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य के विचार के अलावा ससार में मनुष्य जाति की रक्षा की दृष्टि से भी ग्रामों की तरफ प्रयाण करने की हलचल को चलाने की जरूरत है। पश्चिम के कितने ही उद्योग-प्रधान देशों की आबादी लगातार घटती जा रही है। माल्थस को जहा-तहा बढ़ती हुई आबादी का भूत दिखाई दे रहा था। आज प्राणी-विज्ञान के ज्ञाताओं के सामने इसके विपरीत यह समस्या है कि संसार में मनुष्यो की आबादी घट रही है और मनुष्य-जाति के शरीर का बल-गुण आदि सब तरह से ह्रास हो रहा है। समाज विज्ञान का यह तत्त्व तो हर कोई जानता है कि शहर की अपेक्षा ग्रामीण समाज में प्रजोत्पादन की शक्ति अधिक होती है। जैसा कि प्रो० लान्सलॉट हॉग्बन बताते हैं, शहरों मे प्रजोत्पादक शक्ति की कमी का कारण अत्यधिक घनी आबादी तथा दिल बहलाव के दूसरे साधन हैं, जो पितृत्व की इच्छा की पूर्ति से मनुष्य को दूसरी तरफ खीच के ले जाते हैं। फिर अनेक ऐसे सामाजिक परिवर्तन भी हो गये हैं कि जिनके कारण पारिवारिक जीवन की स्थिरता पर विपरीत असर पड़ा है। जीवन में यन्त्रो ने इतना बड़ा स्थान घेर लिया है कि प्रत्यक्ष जीवन भी यन्त्रवत हो गया है। यन्त्र में न तो निर्माण करने की शक्ति है और न जन्म देने की। अतः शहरों मे वही मानवी सम्बन्धों का नमूना बन गया है।[1] इसके विपरीत ग्रामों में बच्चे प्राणी और पौदों में नवजीवन का नित्य दर्शन करते हैं। ये उनके लिए स्वाभाविक घटनाये होती हैं। शहरी-जीवन पूंजीवादी समाज की ही विशेषता नहीं है। बहुत जल्दी 'मनुष्य जीवन

1 व्हाट इज एण्ड आफ अस—पृ० १८४

की रक्षा' के लिए कोई ऐसी ही ग्रामीण जीवन की योजना समाजवादी तन्त्रों को भी बनानी होगी।

समाज की रक्षा तथा सामाजिक शान्ति और सद्भाव की दृष्टि से भी ग्रामीण गण-राज्य की पद्धति लाभदायक होगी। पुराने जमाने के लोग अपने-अपने गावों को एक बड़ा सम्मिलित परिवार मानते थे। एक आदमी पर कोई दुख आता तो उसके दुख से सारा गाव दुखी होता था। अगर किसी के यहा चोरी होती तो गाव के शेष लोग उसकी क्षतिपूर्ति कर देते थे। अगर किसी का मकान जल जाता तो गाव के लोग मिलकर मकान बनाने के साधन जुटाकर उसके लिए नया मकान खड़ा कर देते। अगर किसी परिवार का मुखिया मर जाता तो उसके बाल-बच्चों की देख-भाल सारे गाव के लोग करने लग जाते। एक के यहा मरण या शादी होती तो यह सारे गाव के दुख-सुख का प्रसग बन जाता। श्रम-विभाग और भिन्न-भिन्न पेशों के कारण बेकारी का नामोनिशान न था। यह सच है कि छोटे-मोटे लड़ाई झगडे भी हो जाते, पर वह तो इस बात का निदर्शक था कि ग्रामों की शान्ति श्मशान-शान्ति नहीं थी।

जीवन का आनन्द

ग्रामीण जीवन के पुनरुद्धार से समाज में पुनः आनन्द, उत्साह और उल्लास का प्रवेश हो जावेगा। "प्राचीन भारत का सामाजिक जीवन" (कारपोरेट लाइफ इन एन्शियन्ट इण्डिया) नामक अपनी किताब में डा० मजूमदार ने अति प्राचीन काल से भारत के गावों में दिल बहलाव के साधनों का वर्णन किया है। वैदिक काल में गावों में क्लब-घर होते थे, जिनको आगे चलकर ग्राम-गोष्ठी कहा जाने लगा था। अपने दिन भर के काम-काज के बाद गाव के लोग किसी जगह एकत्र होते। यहा नाच, गान, कहानिया और प्रतिदिन की घटनाओं पर तरह-तरह की चर्चाएं होती। मौर्यकाल तक त्यौहार के दिनों में गावों में इस तरह की मण्डलिया होती थी। ग्रामीण-जीवन के दूसरे क्षेत्रों की भांति इनमें भी ग्रामीणों में बड़ा सहयोग और भाई-भाई का-सा भाव होता था। इन

जिस देश में बड़े-बड़े कारखाने कुछ शहरों में केन्द्रित कर दिये जाते हैं, बाहरी आक्रमणों के लिए वे अत्यन्त अरक्षित रहते हैं। चीन जो इतने वर्षों जापानी आक्रमणों का मुकाबला कर सका उसका एक मुख्य कारण शायद उसकी सहकारी उद्योग-पद्धति है। इस हलचल ने देश के कोने-कोने में गृहोद्योगों का जाल फैलाकर जीवन की आवश्यक वस्तुओं के बारे में प्रायः तमाम चीनी ग्रामों को स्वावलम्बी बना दिया है। इसलिए सौभाग्य से कहिये या दुर्भाग्य से, लश्करशाही की दृष्टि से भी ग्रामीकरण अत्यन्त आवश्यक होगया है। अतः आज के ससार में जबकि बार-बार लम्बी और भयकर लड़ाइया छिड़ने लग गई हैं, यह व्यवस्था करना बहुत ज़रूरी हो गया है कि खान-पान व पहनने के कपड़े जैसी दैनिक जरूरत की चीजें, जहा तक सभव हो, हर स्थान में बन जाया करें, क्योंकि बाहरी या दूर के बाजारों पर इन चीजों के लिए निर्भर रहने से जनता को बहुत कष्टों का सामना करने की नौबत आ सकती है। इसलिए अब तो, जब कि सैनिक महत्व की दृष्टि से भी उत्पादन का विकेन्द्रीकरण अनिवार्य-सा होगया है, हमारे देश मे विकेन्द्रीकरण की जो एक बहुत सुन्दर प्रणाली पहले ही से है उसकी अवहेलना करना निरा पागलपन होगा।'[1]

अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव

जागतिक शान्ति एव अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव को कायम रखने के लिए कई उपाय सुझाये गये हैं। राष्ट्र-संघ का उद्देश्य यह था कि अतर्राष्ट्रीय झगड़ों का निपटारा समझा-बुझाकर या पच-प्रथा द्वारा कर लिया जाय। पर फासीज्म के प्रकोप के सामने यह सारी इमारत तो ढह कर गिर गई। अब सानफ्रान्सिस्को परिषद ने ससार में शाति-स्थापना के लिए एक नया इकरारनामा बनाया है। परन्तु उसका सार तो यह है कि बड़े-तीनों राष्ट्रोंका शेष ससार पर प्रभुत्व रहे। प्रस्तावित अन्तरराष्ट्रीय पुलिस-दल के सचालक एव नियता अमरीका का युक्तराष्ट्र, रूस और ब्रिटेन होंगे।

१ रिपोर्ट आफ दी फेक्ट फाइडिंग कमिटी (हैन्डलूम एण्ड मिल्स) पृ० २०७।

पर अगर खुद सयुक्त राष्ट्रो की आपस मे अनबन हो गई तो यह पुलिस-दल क्या करेगा ?

बहुत से प्रमुख विचारको की राय मे इस अन्तर्राष्ट्रीय अराजकता को दूर करने के लिए सारे ससार को एक छत्र के मातहत ले आना अत्यत आवश्यक है। इलाय कलबर्टसन ने हाल ही मे संयुक्त राष्ट्रों से अपील करते हुए कहा है कि अब अविलम्ब एक ऐसा अन्तर्राष्ट्रीय कार्यशील सङ्गठन निर्माण करना चाहिए। यह वर्तमान राष्ट्रो की सरकारों से अलग हो। वह किसी उच्च कानून पर आधारित हो, जिसके द्वारा सभी राष्ट्रों की सरकारे समान रूप से नियत्रित होती रहें। यह आतर्राष्ट्रीय सङ्गठन स्वतत्र पुलिस के बल पर अपना शासन चलावे ताकि सबकी सम्मलित रूप से रक्षा हो। और प्रसङ्गवश कभी दूसरे राष्ट्रों के मुकाबले में कोई राष्ट्र अकेला भी पड़ जावे तो वह कहीं अकेला पीस न दिया जाय। दूसरो के मुकाबले मे उसकी रक्षा भी हो सके। सर विलियम बीवरिज अपनी "शाति की कीमत" (प्राइस फार पीस) नामक पुस्तक मे तीन बड़ो के बल के आधार पर एक अति राष्ट्रीय सत्ता की स्थापना की जरूरत का प्रकट करते हैं। सुमनर वेल्स कहते हैं कि प्रादेशिक दृष्टि से एक ससारव्यापी सङ्गठन का होना नितान्त आवश्यक है। इन तमाम योजनाओं मे निःशस्त्रीकरण और संयुक्त रक्षा को पहले से मान लिया गया है। परतु इनसे भी हमारी समस्या भली प्रकार हल नहीं होगी।

यह वताने की जरूरत नही है कि तमाम युद्धों का असली कारण आर्थिक शोषण और ससार के बाज़ारों पर कब्जा करने का अत्यधिक लालच है। गत महायुद्ध के बाद से मित्र राष्ट्र अपने माल का निकास दूसरे देशों मे बढाने की धुन में है, जिससे वे अपने देश में रहन-सहन को ऊँचा रख सके।

बाजारों के लिए यह जो साम्राज्यवादी घुडदौड़ हो रही है, वह निःसदेह इन राष्ट्रो मे ईर्ष्या-द्वेष जगावेगी, जिसका अंतिम परिणाम होगा

फिर महायुद्ध, जिसकी कल्पना मात्र से दिल दहल जाता है। इसलिए अगर युद्धों को मिटाना है तो इनकी जड़ पूँजीवाद और साम्राज्यवाद को हमें मिटाना ही होगा। विभिन्न राष्ट्रों के बीच शांति तभी कायम हो सकेगी जब कि खुद उन राष्ट्रों के भीतर भी शांति होगी।[1] भीतरी शांति सम्पत्ति के न्यायपूर्ण वितरण के बगैर असम्भव है। ऐसा वितरण सहकारी पद्धति पर उद्योगों के विकेन्द्रीकरण से ही सम्भव है। गृहोद्योगों की सहायता से लालची साम्राज्यवाद को नष्ट करने में निश्चित रूप से हमें बहुत बड़ी सहायता मिल सकती है और इससे अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना पैदा होगी। इसीलिए आज केवल सैनिक निःशस्त्रीकरण से काम नहीं चलेगा। आज सबसे अधिक जरूरत आर्थिक निःशस्त्रीकरण की है। बड़े-बड़े राष्ट्रों की जनता में अपने-अपने प्रदेशों के लिए जैसे-जैसे प्रेम पैदा होने लगेगा, वैसे-वैसे आक्रमणशील राष्ट्रवाद द्वारा संसार के छिन्न-विच्छिन्न किये जाने का खतरा भी घटता जायगा।

हकीमजी पहले अपना इलाज कीजिए

यह अत्यन्त दुर्भाग्य की बात है कि संयुक्त राष्ट्रों ने विकेन्द्रीकरण की उपाय-योजना सिर्फ पराजित जर्मनी के लिए की है। पोट्स्डम में तीन बड़ों ने यह निश्चय किया था कि सम्पूर्ण जर्मन राष्ट्र में जनतन्त्री सिद्धांतों पर स्थानीय स्वशासन की स्थापना कर दी जायगी। "और यह कि खेती और शांतिपूर्ण गृहोद्योगों के विकास पर अधिक ध्यान दिया जायगा।" और लोग जो चाहे सोचें मेरा तो निश्चित विश्वास है कि इस आर्थिक और राजनैतिक विकेन्द्रीकरण से हिटलर की भूमि में अवश्यमेव स्थायी शांति और समृद्धि आवेगी। ध्यान देने की बात है कि शांतिपूर्ण गृहोद्योगों की स्थापना उस देश में की जा रही है जहां हिंसा को उसकी परमावधि तक पहुंचा दिया गया था। दुःख केवल इस बात का है कि यह विकेन्द्रीकरण अन्दर से नहीं पैदा हुआ है, बाहर से जबरदस्ती के साथ मढ़ा जा रहा है। पर विजेता इस पर बहुत अधिक खुशियां न मनावें।

[1] व्हेअर डू वी गो फ्राम हियर—पृ० १२५

मुझे इन मित्र-राष्ट्रों से कहने दीजिए कि 'हकीमजी, पहले अपना इलाज तो कीजिए।' जो उपाय योजना मित्र-राष्ट्रों ने जर्मनी में शान्ति के लिए की है, उसीका अवलम्बन वे अगर अपने राष्ट्रों में भी करेंगे तो संसार में निश्चित रूप से स्थायी शान्ति की स्थापना हो जायगी, क्योंकि इससे आक्रमण की खुजली ही मिट जायगी। पर अगर उन्होंने यह नहीं किया तो संसार एकबार फिर निश्चित रूप से अभूत-पूर्व संकट में जा गिरेगा।

हमारे आलोचक पूछ सकते हैं कि "जो पद्धति जर्मनी को अनत-काल तक गुलामी में रखने के लिए उस पर लादी गई है, उसीकी सिफारिश आप हिन्दुस्तान के लिए क्यों कर रहे हैं ?" उन्हें मेरा जवाब है—अगर स्वतन्त्र भारत अपनी स्वेच्छा से इस पद्धति को स्वीकार करेगा तो वह न केवल भीतरी शान्ति की स्थापना करेगा, बल्कि वह बाहर भी इस शान्ति को फैला सकेगा। जर्मनी की भाति वह अपमानित और दलित होकर अपनी खोई हुई शक्ति को छिपे-छिपे प्राप्त करके ससार पर अपना सिक्का जमाने की कोशिश नहीं करेगा। वह तो एक दीप-स्तम्भ की भाति होगा जो दूसरे देशों को साम्राज्यवाद और शोषण के अधकार में सदा प्रकाश देकर उनका मार्ग-दर्शन करता रहेगा। वह न तो खुद किसी देश का शोषण करेगा, न दूसरों को अपना शोषण करने देगा।

क्या वह मध्ययुगीन है ?

गाधीवाद के खिलाफ यह बार-बार कहा जाता है कि यह तो हमे मध्ययुग मे ले जाता है। वह घड़ी के काटों को पीछे हटानेवाला है। परन्तु इन आलोचनाओं की जड़ में गाधीजी के सिद्धान्तों के बारे मे लोगों का पूर्ण अज्ञान ही है। गाधीजी यह कदापि नहीं चाहते कि हमारी ग्राम-सस्थाये शेष देश या ससार से कोई सम्बन्ध न रक्खे या उनसे अलग अथवा कटी हुई रहें। न तो यह सम्भव है और न इष्ट ही है। गाधीजी चाहते हैं कि हमारी ग्राम-सस्थाये स्वराज्य-सरकार की प्राथमिक इकाइया हों और उन्हें सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक मामलों में अधिक-से-अधिक स्वतन्त्रता हो। गावों का अपनी तहसील, जिला और प्रान्त की सभाओं के

तथा संघ पार्लमेण्ट की मार्फत तहसील, जिला, प्रान्त और अखिल भारतीय केन्द्र से व्यवस्थित सम्बन्ध हो।

यह मानना गलत होगा कि पुराने और मध्ययुगीन जमाने में भी ग्राम-सस्थाओं का आपस मे कोई सम्बन्ध नहीं था। मनुस्मृति, महाभारत, कौटिल्य के अर्थशास्त्र और सस्कृत के अन्य ग्रन्थों से हमे पता चलता है कि प्रत्येक गाव, दस गाव, बीस गाव, एक सौ गाव और एक हजार गावों पर योग्य अधिकारी नियुक्त रहते थे और वे अपने मातहत के गावों के काम-काज की देख-भाल करते थे। यह भी सत्य है कि प्रत्येक गाव को अपने मामलों मे राष्ट्रीय रक्षा और कार्यक्षमता से सुसगत बहुत अधिक स्वाधीनता थी। परन्तु ग्रामीण जनतन्त्र शनैः-शनैः संघ-निर्माण के आधार पर राजनैतिक सगठनो में मिले जाते और ठेठ नीचे से जनता के बने स्वशासित व्यापक संगठन से बढ़ते हुए, एक के ऊपर एक, इस तरह उत्तरोत्तर बडे-बड़े संगठन बनते जाते थे। प्रो० राधाकुमुद मुकर्जी बताते हैं कि इन उत्तरोत्तर ऊंचे बढ़नेवाले घटकों को क्रमशः सभा, महासभा, और नत्तर कहा जाता था। चोलों के महान साम्राज्य के अधिपति सम्राट राजराज के समय के जो अनेक शिलालेख मिले हैं, उनमे इस राजा के शासन-संगठन का उल्लेख है, जिसमे इस प्रकार से शासन-तन्त्र का परिचय देनेवाला सबसे उत्तम वर्णन मिलता है। सब से छोटा घटक—और शासन-सगठन का आधार गाव (उरू) या कस्बा (नगर) था। इससे ऊंचा घटक नाडु अथवा कुरम् कहलाता था। सगठन में तीसरा स्थान कोट्टम या विसाया का था और इससे ऊपर जो सगठन था उसे मण्डल या राष्ट्र कहते थे। यह साम्राज्य का एक प्रान्त था। स्व० काशीप्रसाद जायसवाल ने अपनी 'हिन्दू राजतत्र' में जनपद के सगठन का कुछ परिचय दिया है। इसमें देश की कितनी ही प्रान्तीय सभाओं का प्रतिनिधित्व होता था। इन सब बातों से प्रकट होता है कि हिन्दुस्तान की प्राचीन ग्राम-प्रणाली पुराने कबीलों का अवशेष नहीं, बल्कि वह संघ पद्धति पर संगठित एक प्रकार की शासन-प्रणाली थी।

आज हमें इस संगठन को और भी अधिक व्यवस्थित और दृढ़ बनाना होगा। परन्तु इसकी आधारभूत कल्पना विकेन्द्रीकरण और सत्ता का बटवारा हो, जिनके कारण हमारी ग्राम-संस्थायें सदियों टिकी हैं। भारत के भावी शासन-विधान का आधार भी यही दो तत्त्व हों। यह पद्धति मध्ययुगीन नहीं, बल्कि किसी भी आधुनिक राज्य के लिए आदर्श के नमूने का काम देगी। डा० राधाकृष्णन् कहते हैं—'गावों की तरफ़ लौट जाने के मानी जंगली—असभ्य-युग में चले जाना नहीं है। वह तो केवल भारतवर्ष की स्वाभाविक जीवन-पद्धति का पुनः स्वीकार मात्र है, जिसने हमारे जीवन को सहेतुक बनाया, उसमें श्रद्धा उत्पन्न की और उसे सार्थकता प्रदान की। मानव-जाति की सभ्यता की रक्षा का केवल वही एक मात्र तरीक़ा है। ग्रामीण और किसान-जीवन वाले, ग्राम-पंचायतों वाले, जंगलों के आश्रम वाले, और आध्यात्मिक साधनाओं वाले हिन्दुस्तान ने समस्त संसार को बहुत बड़े-बड़े सबक सिखाये हैं। पर एक भी आदमी के साथ अन्याय नहीं किया है, एक भी देश को हानि नहीं पहुंचाई और न दूसरे देशों पर कब्जा करने की अभिलाषा रक्खी है।'

इतने पर भी अगर कोई आलोचक यही कहे कि गांधीजी के सिद्धान्त तो मध्ययुग में ले जाने वाले हैं तो मैं निःसंकोच कह दूंगा कि ये मध्ययुगीन सिद्धांत आजकल की सभ्यता से, जो अपने साथ शोषण, उपनिवेशों का विस्तार, साम्राज्यवाद और आत्म-घातक लड़ाइयां लाई है हजार गुने अच्छे हैं। अगर प्रगति के मानी यही हैं, जो कि यह भौतिक सभ्यता प्रकट करती है, तो [illegible]।

ग्राम, प्रान्त, देश और ससार के मनुष्यों के साथ ही नहीं वल्कि इस अनन्त विश्व के साथ तादात्म्य का अनुभव करने की शिक्षा वे हमे दे रहे हैं। परन्तु इस विश्वबन्धुत्व का अनुभव और व्यवहार करने के लिए यह जरा भी आवश्यक नहीं कि हम अपने पर फैलाकर निरन्तर जमीन और आसमान के अन्तिम छोर तक चक्कर काटते रहें। हम तो शातिपूर्वक अपनी कुटिया मे बैठकर भी विश्व के साथ तादात्म्य का अनुभव कर सकते हैं। 'अंतर्राष्ट्रीयता और विश्वबन्धुत्व दिशा और काल से नहीं, वल्कि मन की अवस्था से ताल्लुक रखने वाली वस्तुएं हैं। हम ग्राम-प्रेम और विश्व-प्रेम का पालन एक साथ कर सकते हैं। गाधीजी के विचारानुसार हमारा स्थूल निवास का आधार तो गाव हो और आध्यात्मिक तथा सास्कृतिक निवास का आधार विश्व हो। उनके स्वदेशी-धर्म का सार यही है। गाधीजी सारी मनुष्य-जाति और विश्व की सेवा जरूर करना चाहते हैं, परन्तु अपने निकटतम पड़ोसियों और देश की सेवा द्वारा। वह कहते हैं मेरा देश-प्रेम दोनों प्रकार का है। वह कुछ चीजों को शामिल करता है और कुछ को बाहर। बाहर इस अर्थ में करता है कि अत्यन्त नम्रभाव से मै अपना ध्यान केवल मेरी जन्म-भूमि तक ही मर्यादित कर देता हू। परन्तु शामिल इस तरह करता है कि मेरी सेवा का आधार किसी प्रकार की होड या विरोध नहीं है। मै तो भूतमात्र के साथ अपने आपको मिला देना चाहता हू।'[1]

नवीन सभ्यता

असल बात तो यह है कि गाधीजी का तरीका जीवन का मध्ययुगीन तरीका नहीं वल्कि प्रत्यक्ष एक नवीन सभ्यता है। वर्तमान सभ्यता की बुराइयों को दूर करने के लिए कई एक-से-एक बढकर उपाय सुझाये गये, परन्तु सब-के-सब एक बात हिंसा और जबरदस्ती पर मूलतः सहमत हैं। वाल्टर लिपमेन लिखता है कि संसार के प्रभुत्व के लिए लड़नेवाले यद्यपि आज अलग-अलग रंग के कपडे पहने हुए हैं, तथापि उनका

१ विज्डम आफ गांधी—राय वाकर—पृ० ५५।

हथियारखाना एक ही है। उनके सिद्धातों की भाषा सिर्फ जुदी है पर विषय एक ही है। और वे एक ही युद्ध-गीत गाते हुए रणस्थली की ओर प्रयाण कर रहे हैं, सिर्फ कुछ शब्द अलग-अलग हैं। मनुष्य के जीवन और श्रम का वे जबरदस्ती के साथ उपयोग करना चाहते हैं। उनका सिद्धात यह है कि सगठन मे ज्यों ज्यों अधिकाधिक जबरदस्ती हम करते जावेंगे, त्यों त्यो अव्यवस्था और दुःखो पर विजय पाते जावेंगे। वे कहते हैं, राज्य अपनी शक्ति के बल पर मनुष्यो को सुखी कर सकता है।'[1] यह युग राज्य की जबरदस्ती का युग है। प्रवाह जोरों का है। जो इस सम्मिलित सत्ता या अधिकारतत्र को नही मानता वह पत्थर है, वह प्रतिक्रियावादी है। ये शब्द कडे हो तो उसे एक सज्जन पागल कह लीजिए, जो प्रवाह के खिलाफ तैरने का निराशाजनक प्रयत्न करता है। ऐसे जमाने में महात्मा गाधी अकेले ऐसे आदमी हैं, जो पिछले कुछ वर्षों से लगातार और आग्रहपूर्वक अहिसा और विकेन्द्रीकरण की सलाह देते रहे हैं। सादगी, सजीवता और वास्तविकता की दृष्टि से उनका दृष्टि बिन्दु एकदम पूरबवासियों का-सा है। डा० राधाकमल कहते हैं "हमारे राजनैतिक भविष्य की पूर्वी कल्पना मे बुद्धिवादियो की डिक्टेटरी या चन्द खास दौलतमन्दों की हुकूमत नही होगी। विशेष वर्गों से ईर्ष्या रखने वाले किसान-मजदूरों की वह मनमानी भी नहीं होगी, जो करोड़ों बेजबानों पर, ऊपर, से उनकी इच्छा-अनिच्छा का बगैर खयाल किये, लादी गई हो। असल में वह तो किसानो का सच्चा जनतत्र होगा। पुराने देहात और नगर के प्रत्यक्ष काम करने वाले जरूरी सगठन उसके आधार होंगे और फिर प्रातिनिधीक पद्धति से तहसील, जिला और प्रान्तीय क्षेत्रो का वे सचालन करेंगे और अन्त मे सब मिलकर राष्ट्रीय धारासभा का सम्मिलित रूप से निर्माण करेंगे। यह जनतंत्र ग्रामों में पुन' जीवन का संचार करेंगे और उन पवित्र मदिरो तथा वृक्षो को पुनः अपना महत्त्व प्रदान करेंगे जहा से कि इन पद्धति का प्रारम्भ हुआ था। किन्तु साथ ही इनमे

[1] 'दि गुड सोसायटी'—वाल्टर लिपमेन. पृ० ५

नवीन युगोचित क्रियाशील और प्रेम भरे जीवन की ताजगी और चेतना भी होगी ही।"[1]

गाधीजी ने हाल ही में एक वक्तव्य दिया था, जिसमें उन्होंने इस नवीन सभ्यता की अपनी कल्पना को राम-राज्य के नाम से प्रकट किया था। वह लिखते हैं, "धार्मिक भाषा में उसे हम राम-राज्य अर्थात् खुदाई हुकूमत कह सकते हैं। पर राजनैतिक भाषा में वह संपूर्ण जनतन्त्र है। उसमें सधनता और निर्धनता, वर्ण, जाति, धर्म, लिंग आदि सम्बन्धी सब विषमताये नहीं होंगी। राज्य और जमीन पर जनता का प्रभुत्व होगा। न्याय तुरत और पूर्ण होगा, पर खर्चीला न होगा। वहा पूजा-प्रार्थना की स्वतत्रता होगी; और भाषण, मुद्रण वगैरा की भी आजादी होगी; क्योंकि नैतिक संयम के आधार पर स्वेच्छापूर्वक बनाये कानून का राज्य होगा और लोग उसका पालन करेंगे। ऐसे राज्य की बुनियाद सत्य और अहिंसा होंगे और उसमें सुख, समृद्ध और स्वावलम्बी गाव तथा ग्राम पंचायते होंगी।"

मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि गाधीजी के सिद्धातों पर बनाई गई वैधानिक सरकार का आदर्श केवल हवाई चीज नहीं होगी बल्कि वह तो आर्थिक संघर्ष और आंतर्राष्ट्रीय लड़ाइयों पर एक व्यावहारिक एवं स्थायी हल होगा। इन कल्पनाओं को अव्यावहारिक सपना कह कर जो लोग इनकी खिल्ली उड़ाते हैं वे जरा आधुनिक महायुद्धों से होने वाली बरबादी का खयाल करे। अगर हम चाहते हैं कि अब भविष्य में ऐसे भयंकर युद्धों की पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिए तो हमें अपने आर्थिक और राजनैतिक संगठनों में आमूल परिवर्तन करना होगा। तथा कथित प्रगतिशील योजनाये और तजवीजें हमें कहीं नहीं ले जा सकतीं। जैसा कि सर विलियम बीवरिज ने कहा है—"अब हमारे सामने आज के जगत् और खयाली दुनिया के बीच चुनाव करने की समस्या नहीं,

[1] डमाक्रेसीज़ आफ़ दी ईस्ट—पृ० ३६३-६४

बल्कि इस खयाली दुनिया की आदर्श हुकूमत और जहन्नुम के बीच चुनाव करने की समस्या खड़ी है।'' हम जहन्नुम को पसन्द करना चाहते हैं या गान्धीजी के कल्पनागत ऐसे नये ससार को ? हमें यह निर्णय तुरंत करना है, और करना है श्रद्धा और निश्चय पूर्वक अन्यथा इस जोरों से आने वाले ससार व्यापक विनाश के प्रवाह को हम नहीं रोक सकेंगे।

दूसरा भाग

: ५ :

मौलिक अधिकार और कर्तव्य

इस पुस्तिका के पहले भाग मे मैंने उन बुनियादी सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है, जिनके आधार पर स्वराज्य का विधान बनाया जाना चाहिये। अब इस दूसरे भाग में उन विभिन्न अङ्गो और पहलुओं की चर्चा करूंगा जो इसकी खासियत होंगे। यह कोई कलमवार विधान पेश करने का प्रयास नहीं है। वह तो विधान-शास्त्रियों का अपना काम है। अगर इस पुस्तिका में बताई गई मुख्य-मुख्य बाते भावी विधान मे शामिल कर ली गई तो मुझे संतोष हो जायगा। हां, यहां पर यह भी बता दू कि यह योजना स्वतन्त्र भारत के लिए है, जिसका अंग्रेजी साम्राज्य से कोई सम्बन्ध नहीं होगा। तो सब से पहले हम मौलिक अधिकारों को ही ले। भारतीय विधान में नागरिकों के अधिकारो को साफ-साफ तौर पर बता देना बहुत जरूरी है, क्योंकि हमारे देश में जाहिल जातीय समस्या है, उसका ध्यान रखना जरूरी है। इन अधिकारों मे अल्पसंख्यकों को अधिक-से-अधिक संरक्षण दिया गया है। विधान मे इनका अवश्य समावेश किया जाना चाहिए।

१. कानून की निगाह मे तमाम नागरिक समान होंगे। उनमें जात-पात, रंग, लिंग, मजहब या सम्प्रदाय, और अमीर-गरीब का कोई भेद-भाव न होगा।

२. राज की नौकरी, मान-सम्मान और व्यापार-व्यवसाय में किसी भी नागरिक स्त्री या पुरुष के मार्ग मे धर्म, जाति या विश्वास के कारण कोई रुकावट न होगी।

३. नागरिकों को पूरी शारीरिक-स्वतन्त्रता, भाषण-स्वतन्त्रता, सभा-संगठन की स्वतन्त्रता और बात-चीत की स्वतन्त्रता होगी। केवल एक बंधन होगा—अहिंसा और सार्वजनिक नीति-अनीति का।

४. प्रत्येक नागरिक को अपने विवेक के अनुसार चलने की स्वतन्त्रता होगी, व्यक्तिगत और सामाजिक रूढ़ियों के पालन की आजादी होगी। हां, इनमें सार्वजनिक व्यवस्था और नीति-अनीति का ध्यान रखना जरूरी होगा।

५. तमाम नागरिकों को अपनी लिपि, भाषा और संस्कृति की रक्षा और विकास करने का अधिकार होगा।

६ राजकोष से बनाये गये या समस्त जनता के उपयोग के लिए खानगी व्यक्तियों द्वारा दिये गये तमाम कूए, बावड़ी, तालाब, सड़कें, पाठशालाएं और आराम-घर वगैरा पर तमाम नागरिकों का अधिकार समान होगा।

७. प्रत्येक नागरिक को बुनियादी शिक्षा अर्थात नई तालीम मुफ्त पाने का अधिकार होगा।

८. अपनी जान और माल की रक्षा के लिए हिंसा, जबरदस्ती, या धमकी वगैरा से कानून और पुलिस की रक्षा पाने का प्रत्येक व्यक्ति अधिकारी होगा।

९. ईमानदारी से काम करते हुए हर व्यक्ति को कम-से-कम निम्न [illegible] वेतन पाने का अधिकार होगा।

१०. दिन में आठ घण्टे से अधिक काम करने के लिए किसी पर भी जबरदस्ती नहीं की जा सकेगी।

११ प्रत्येक मनुष्य को इलाज और दवा-दारू के [illegible] (टीका [illegible] लगवाने के [illegible]) [illegible]।

१२. [illegible] अधिकार के [illegible] प्रत्येक [illegible] अधिकार [illegible]।

१३. राज द्वारा बनाये गये कानूनो के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को हथियार रखने का अधिकार होगा।

कर्तव्य

परन्तु ये तमाम अधिकार नीचे लिखे कर्तव्यों के पालन पर ही प्राप्त हो सकेंगे :

१. तमाम नागरिक राष्ट्र के प्रति वफादार होंगे।

२. कानून के अनुसार नकद, अनाज वगैरा या शारीरिक श्रम राष्ट्र के कोष में देकर हर नागरिक सार्वजनिक सेवा में सहायता करेगा।

३. मनुष्य-मनुष्य के बीच होने वाले शोषण से प्रत्येक नागरिक अपने को बचावेगा, उसे रोकेगा और ज़रूरत पडने पर प्रतिकार करेगा।

: ६ :

गांव—राष्ट्र की बुनियादी इकाई

जैसा कि पहले बताया गया है, गाधीजी चाहते हैं कि स्वतन्त्र भारत में स्वावलम्बी और स्वशासित गाव राष्ट्र की सरकार की बुनियादी इकाइया होंगे। यह योजना देश की पूर्व परम्परा के अनुकूल ही होगी। अगर गाव बहुत छोटे-छोटे और नजदीक-नज़दीक हों तो ऐसे अनेक गावों को मिलाकर उनको एक इकाई माना जा सकता है।

पचायत

तमाम बालिग स्त्री-पुरुषों के वोट से प्रत्येक गाव में एक पचायत चुनी जायगी। साधारणतया इसमें पाच ही आदमी हों। अगर गाव बडे हों तो पंचों की संख्या सात से ग्यारह तक भी हो सकती है। पंचायत के सरपच का चुनाव सर्वानुमति से होगा। अगर पंचों में सर्वानुमति से सरपंच का चुनाव संभव नहीं होगा तो गाव के तमाम बालिग स्त्री-पुरुष खुद मिलकर पंचों में से किसी एक का पंचायत के अध्यक्ष के लिए चुनाव कर लेगे।

साधारणतया प्रत्येक पंचायत का कार्यकाल तीन वर्ष का होगा। वही सदस्य दूसरी और तीसरी बार भी चुने जा सकते हैं। पर तीन बार से अधिक नही। अगर कोई सदस्य अपना कार्यकाल समाप्त होने से पहले बीच ही मे गाव का विश्वास खो दे तो उसे ७५ प्रतिशत बहुमति से वापिस भी बुलाया जा सकेगा।

अपने गाव के पटवारी, चौकीदार या पुलिस कर्मचारी को मुकर्रर करने या अलग करने का पूरा अधिकार पंचायत को होगा।

जहातक सम्भव हो—और खासकर जहा अल्पमति के अधिकारो का सवाल हो—पचायत के निर्णय सर्वानुमति से ही हों।

पंचायत के काम

चूंकि पचायतों को अधिक-से-अधिक स्थानीय स्वतंत्रता होगी, गाव के सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाले तमाम प्रश्नों के सम्बन्ध मे पंचायत को अत्यन्त व्यापक अधिकार होंगे। वे ये हैं—

१—शिक्षा

(क) एक प्राथमिक शाला—अर्थात् पहली बुनियादी पाठशाला चलाना। इसमे किसी उत्पादक उद्योग के द्वारा बच्चों को प्रारम्भिक, सास्कृतिक और औद्योगिक तालीम दी जायगी।

(ख) एक ग्रथालय और वाचनालय चलाना। ग्रन्थालय में पुस्तकें शिक्षात्मक होंगी, जो गावों की सामाजिक, आर्थिक, और राजनैतिक प्रवृत्तियों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखने वाली होंगीं।

(ग) प्रौढों के लिए एक अलग शाला चलाना।

२—मनोरंजन

(क) अखाड़ा, व्यायामशाला और खेल के मैदानों की व्यवस्था करना। स्वदेशी खेलो को खासतौर पर प्रोत्साहन दिया जायगा।

(ख) समय-समय पर कला और कारीगरी की नुमाइशें करना।

(ग) सामूहिक रूप से तमाम जातियों के त्यौहार मनाना।

(घ) मोसम के मेले करने की व्यवस्था करना।

(ङ) भजन और कीर्तन मण्डलिया चलाना।

(च) लोक-गीत, नृत्य और नाटकों को प्रोत्साहन देना।

३—आत्म-रक्षा

(क) चोर, डाकू और जगली जानवरो से गाव की रक्षा करने के लिए ग्राम-रक्षक रखना।

(ख) तमाम नागरिको को सत्याग्रह और अहिंसक प्रतिकार और रक्षा की विधिवत् शिक्षा देने की नियमित व्यवस्था करना।

४—खेती

(क) गाव के प्रत्येक खेत का लगान कूतना।

(ख) किसानो से जमीन का लगान वसूल करना।

(ग) चक-बन्दी और सामूहिक खेती को प्रोत्साहन देना और उसका संगठन करना।

(घ) आवपाशी की उचित व्यवस्था करना।

(ङ) सहकारी दूकानों के जरिये किसानों को अच्छे बीज और अच्छे औजार देने की व्यवस्था करना।

(च) यह कोशिश करना कि प्रत्येक गाव अपने खाने का तमाम किस्म का जरूरी अनाज वगैरा खुद ही पैदा कर ले। पैसा देने वाली फसले पैदा करने की पद्धति को रोकना।

(छ) किसानो के कर्जे का हिसाब लगाकर उसकी जाच करना, जहा जरूरत हो उनके कर्ज को कम करना और व्याज की दरों पर नियन्त्रण लगाना। जहा सम्भव हो सहकार पद्धति से सयुक्त साख पर कर्ज देनेवाले बैंक भी खोलना।

(ज) मिट्टी के बहते रहने से हर साल जो जमीन खराब होती जा रही है उसे रोकना और सम्मिलित प्रयत्न से ऊसर जमीनों को उपजाऊ बनाना।

५—उद्योग

(क) गाव के उपयोग के लिए खादी की उत्पत्ति का सगठन करना ।
(ख) सहकार पद्धति पर अन्य ग्रामोद्योगो का भी सगठन करना ।
(ग) एक सहकारी दूधशाला चलाना, भैस के बजाय गाय के पालन को प्रोत्साहन दिया जायगा ।
(घ) मरे पशुओं के चमडे को काम मे लाने के लिए चमड़ा पकाने की शालाये कायम करना ।

६—व्यापार-व्यवसाय

(क) खेती और गृहोद्योगों से पैदा होने वाली चीजों को सहकारी पद्धति पर बेचने की व्यवस्था करना ।
(ख) बाहर का माल खरीदने के लिए ग्राहकों की सहकारी संस्थाओं का सगठन करना ।
(ग) वही चीजे बेचने की व्यवस्था करना जो गावों की जरूरते पूरी करने के बाद बच रहें । इसी प्रकार बाहर से भी वही चीजें खरीदी जावे जो गावो मे पैदा नही हो सकतीं ।
(घ) गावो मे सहकारी गोदाम चलाना ।
(ङ) गावों के कारीगरो की जरूरतो को पूरी करने के लिए सस्ती दर पर कर्ज दिलाने की व्यवस्था करना ।

७—सफाई और आरोग्य

(क) गाव मे सफाई की उचित व्यवस्था करना ।
(ख) गाव की जनता की असुविधाओं को दूर करना तथा महामारियों को फैलने से रोकना ।
(ग) पीने के लिए विपुल मात्रा मे साफ और आरोग्य-वर्धक जल की व्यवस्था करना ।

८—न्याय

(क) गाव के लोगो को जल्दी और सस्ता न्याय मिले ऐसी व्यवस्था करना। पञ्चायतों को दीवानी और फौजदारी के व्यापक अधिकार होगे।

(ख) ग्रामीणों को कानूनी सलाह और जानकारी मुफ्त मिले ऐसी व्यवस्था करना।

९—कर और अर्थ-व्यवस्था

(क) खास-खास कामों के लिये गावों पर कर लगाना और उन्हें वसूल करना। नकद धन के बजाय अनाज व खेतों की अन्य पैदावार, और श्रम के रूप मे करो की अदायगी को प्रोत्साहन दिया जायगा।

(ख) सामाजिक और धार्मिक प्रसगों पर व्यक्तिगत दान एकत्र करना।

(ग) आमद और खर्च का हिसाब ठीक तरह से रखने की व्यवस्था करना। इनकी विधिवत् जाच हो। जनता को इसे देखने का हक होगा।

गाधीवादी विधान में हमारे गावों को कितनी आजादी होगी इसकी पाठकों को कल्पना देने के लिए पञ्चायत के कामों की सूची को मैंने काफी विस्तृत बनाने का यत्न किया है।

: ७ :

तहसील और जिला पंचायते

गावों की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक प्रवृत्तियों को सुव्यवस्थित करने के लिए तहसील और जिला पञ्चायते होंगी। इन ऊपरी संस्थाओं का काम सलाह देने का होगा। वे हुक्म नहीं देंगी। वे मार्ग-दर्शन करेंगी, सलाह देंगी और देखभाल करेंगी। मातहत पञ्चायतों को

तहसील पंचायतें

कुछ गावों के विधिवत् चुने हुए अध्यक्षों की तहसील या परगना पचायते होंगी। एक तहसील मे जितने गाव शामिल होंगे उतने ही इस तहसील पंचायत के सदस्य होंगे। साधारणतया वीस गाव की एक तहसील होगी जिसकी आवादी लगभग वीस हजार के करीव होगी। कहने की जरूरत नहीं कि न्याय देने, कानून बनाने और अमल करने की दृष्टि से तहसीलों के मौजूदा आकार वहुत वड़े होंगे। इन्हें तोड़कर वहुत छोटा करना होगा।

ग्राम पचायत की भाति तहसील पंचायत का कार्यक्रम भी तीन वर्ष का होगा।

तहसील पंचायत के काम नीचे लिखे अनुसार होंगे :—

(अ) ग्राम-पंचायतों का मार्ग-दर्शन करना, उनके काम की देख-भाल करना और उनके हिसाव की जाच करना।

(आ) माध्यमिक या ऊपर के दर्जे की बुनियादी शिक्षा की व्यवस्था करना।

(इ) विशेष प्रकार की चिकित्सा और इलाज के लिए वड़े अस्पताल और प्रसूति-गृह चलाना।

(ई) तहसील की तमाम पंचायतों की वचत और घटी को देखकर उनकी आय-व्यय और ज़रूरतों का मेल वैठाना।

(उ) विशेष परिस्थितियों के लिए अतिरिक्त पुलिस दल रखना।

(ऊ) तहसील की जनता के लिए सहकारी वैंक और विक्री संस्थाओं को चलाना।

(ए) गावों के वीच के रास्तों को अच्छी हालत में रखना।

(ऐ) खेती की पैदावार को वढ़ाने वगैरा के प्रयोग वताने के लिए आदर्श खेत चलाना।

(ओ) गावों के वीच खेल-कूद वगैरा का संगठन करना।

जिला पंचायतें

सब तालुका-पञ्चायतों के अध्यक्ष मिल कर ज़िला-पञ्चायत बनेगी। पर साधारणतया एक ज़िले में उपर्युक्त आकार-प्रकार की बारह से अधिक तहसीलें नहीं होंगी। जिला पचायत का कार्यक्रम भी तीन वर्ष ही होगा।

उसके काम ये होंगे—

(अ) तहसील-पंचायतों का मार्ग-दर्शन, उनके काम की देख-भाल और हिसाब की जांच-पड़ताल करना।

(आ) बुनियादी तालीम के बाद की अर्थात् कॉलेज की उच्च शिक्षा की व्यवस्था करना।

(इ) खास-खास बीमारियों के इलाज के लिए अच्छे सुव्यवस्थित अस्पताल चलाना।

(ई) ज़िले में विशिष्ट परिस्थितियों के लिए अतिरिक्त पुलिस का दल रखना।

(उ) ज़िला सहकारी बैंक और बिक्री संस्थाएं चलाना।

(ऊ) जिले में खेती की पर्याप्त व्यवस्था करना।

(ए) तहसीलों के बीच खेलों की टूर्नामेंटों का संगठन करना।

म्युनिसिपल कौन्सिलें

कस्बों में वार्ड-पंचायतें और म्युनिसिपल कौन्सिलें होंगी। उन्हें कानून बनाने और उनके अमल के व्यापक अधिकार होंगे। उनके काम जिला पंचायतों के ढंग के होंगे अर्थात् वे वार्ड-पचायतों की प्रवृत्तियों का समन्वय एवं सामंजस्य करती रहेंगी।

कस्बे के तमाम आवागमन और यातायात के साधनों, बिजली घर, और वॉटर वर्क्स पर म्युनिसिपल कौन्सिल का स्वामित्व होगा, और वही उनका संचालन करेगी।

: ८ :

प्रान्तीय शासन

जिला पञ्चायते तथा म्युनिसिपल कौन्सिलें अपने अध्यक्षों को प्रान्तीय पचायत मे भेजेगी। इनकी सख्या प्रान्तों के आकार के अनुसार अलग-अलग होगी। छोटे प्रान्तों मे जिला पचायते तथा म्युनिसिपल कौंसिलें अपने अध्यक्ष के अलावा एक और प्रतिनिधि प्रान्तीय पचायत मे भेज सकेगी।

प्रान्तीय पञ्चायतों का कार्य काल भी तीन वर्ष ही होगा।

कार्य

प्रान्तीय पञ्चायत के काम ये होंगे—

(अ) जिला पंचायतों की प्रवृत्तियों का मार्ग-दर्शन, देख-भाल और समन्वय करना तथा उनके हिसाब की जाँच-पड़ताल करना।

(आ) विशेष जरूरत के प्रसंगों के लिए अतिरिक्त पुलिस का दल रखना।

(इ) उच्च औद्योगिक शिक्षा और संशोधन कार्य के लिए विश्व-विद्यालय चलाना।

सीमायें

प्रान्त की सीमायें खासतौर पर भाषाओं के आधार पर कायम की जावेगी। प्रान्तों की वर्तमान सीमायें ऐतिहासिक ज़रूरतों के आधार पर कायम की गई हैं। उनके पीछे कोई वैज्ञानिक तत्त्व नही है। इनमें से कई के अन्दर बेमेल और टकराते हुए तत्त्वों को जोड़ दिया गया है। इसलिए भाषा के आधार पर इनका पुनर्निर्माण करना होगा। यह इसलिए बहुत जरूरी है कि आगे चलकर प्रान्त के तमाम कानून, उनका अमल तथा न्याय और शिक्षा का काम सब प्रान्तीय भाषा में होगा। ऐसी सूरत में प्रान्त में एक से अधिक भाषाएं होंगी तो बहुत-सी कठिनाइया खड़ी हो जावेगी। फिर शिक्षा की दृष्टि से भी यह अत्यन्त आवश्यक है कि बच्चों की शिक्षा ठेठ ऊपर तक उनकी मातृभाषा में ही हो। दो या दो से अधिक भाषा वाले प्रान्तों मे मातृभाषा द्वारा शिक्षा का प्रबन्ध करना बहुत असम्भव हो जायगा। इस दृष्टि से बम्बई, मदरास और मध्य प्रदेश की वर्तमान रचना में बहुत बड़े फेर बदल करने होंगे।

भावी विधान में प्रान्तों के नाम ये होंगे :—

	प्रान्त	भाषा
१.	अजमेर-मेरवाड़ा	हिन्दुस्तानी
२.	आन्ध्र	तेलगू
३.	आसाम	आसामी
४.	बिहार	हिन्दुस्तानी
५	बंगाल	बंगाली
६.	बम्बई (शहर)	मराठी और गुजराती
७.	दिल्ली	हिन्दुस्तानी
८,	गुजरात	गुजराती
९.	कर्नाटक	कन्नड़
१०.	केरल	मलयालम
११	महाकोशल	हिन्दुस्तानी

१२.	महाराष्ट्र	मराठी
१३.	नागपुर (बरार सहित)	मराठी
१४.	सीमाप्रान्त	पश्तो
१५.	पजाब	पजाबी
१६	सिन्ध	सिन्धी
१७.	तामिलनाड	तामिल
१८.	सयुक्त प्रान्त	हिन्दुस्तानी
१९.	उत्कल	उडिया

काग्रेस ने जिस पद्धति पर प्रान्तों का विभाजन किया है उसी पद्धति पर यह उपर्युक्त विभाजन भी किया गया है। नागपुर और विदर्भ को एक साथ जोड़ दिया है, बस इतना ही फर्क है। उसके कारण स्पष्ट हैं। यद्यपि नाम तो वे ही क़ायम रक्खे गये हैं जो काग्रेस ने दिये हैं। परन्तु भावी विधान मे उनकी सीमाए ठीक-ठीक वे ही नहीं होंगी जो काग्रेसीप्रान्तों की आज हैं। उदाहरणार्थ अगर सब नहीं तो कुछ ही रियासते भारतीय सघ मे शामिल होने का निश्चय कर ले तो उन रियासतों की सलाह से भाषावार प्रान्तो की सीमाये बदल जावेगी। आज के सयुक्तप्रान्त को बड़ी आसानी से दो भागों में बाटा जा सकता है—पूर्वी और पश्चिमी। खैर, यह सब काम एक खास कमीशन को सौंप दिया जायगा, जिसकी नियुक्ति भारतीय विधान निर्मात्री सभा करेगी। जहा आवश्यक होगा खास-खास प्रदेशों की जनता की राय भी बालिग मताधिकार के आधार पर मत-गणना से ले ली जायगी।

शासन

प्रान्तीय पचायत की धारा सभा होगी। वह एक ही होगी। प्रान्त और अपने मातहत प्रदेश के लिए ऊपर बताये कामों के सम्बन्ध में कानून बनाने का उसे पूरा अधिकार होगा।

पचायत अपने अध्यक्ष का चुनाव खुद करेगी। वही प्रधान प्रान्त का [illegible] होगा।

शासन और धारा-सभा के काम बिलकुल अलग-अलग होंगे। प्रान्तीय पंचायत भिन्न-भिन्न महकमों का संचालन करने के लिए मन्त्रियों की नियुक्ति करेगी। ये मन्त्री यद्यपि होंगे तो पचायत के प्रति पूरी तरह जिम्मेवार, परन्तु वे प्रान्तीय पंचायत के सदस्यों में से नहीं होंगे। "जहा शासन के प्रधान संचालक और धारा सभा के अगुआ लगभग वही होते हैं और शासन के संचालकों के वेतन बहुत भारी होते हैं, वहा वे सही अर्थों में पूरी तरह जिम्मेवार नहीं रह जाते। दलबन्दी और षडयन्त्र फैल जाते हैं और निःस्वार्थ भाव से कानून नहीं बन पाते।"[1] पंचायत के सदस्य सही मानो में अवैतनिक काम करेंगे।

मन्त्रियों का कार्यकाल भी तीन ही वर्ष का होगा। अयोग्यता और कर्तव्य-भ्रष्टता की अवस्था को छोड साधारणतया नई पचायत के आने पर वे बदले नही जावेगे।

मन्त्रियों की नियुक्तिया पार्टी या संप्रदाय के सिद्धान्त पर नही होंगी। प्रान्त के वे अच्छे-से-अच्छे बुद्धिमान आदमी होंगे। प्रान्त के आकार के अनुसार उनकी संख्या कम या अधिक होगी। पर वे पाच से कम और नौ से अधिक नहीं होंगे।

: ६ :

केन्द्रीय सरकार

तमाम प्रान्तीय पंचायतों के अध्यक्षों से अखिल-भारत-पचायत बनेगी। जो प्रान्त बड़े होंगे, उनमे से अध्यक्ष के अलावा प्रान्तीय पचायत के सदस्यों मे से एक और प्रतिनिधि अखिल-भारत पंचायत मे भेजा जा सकेगा।

अखिल-भारत पंचायत ही केन्द्रीय धारा सभा होगी। वह भी एक ही होगी। गोलमेज़ परिषद में दिये गये अपने भाषणों में एक में गाधीजी ने कहा था—

१ आउट लाइन स्कीम आफ स्वराज्य—श्री देशबन्धुदास और डा० भगवानदास अध्याय ६ की टिप्पणी।

"दो-दो धारा सभाओ की पद्धति का मुझे जरा भी शौक नहीं है। मुझे इस बात का जरा भी डर नही कि जनता के प्रतिनिधियों की बनी धारा सभाये मनमाने तौर पर चलेगी, जल्दबाजी मे कानून बना लेगी और फिर बाद मे उन्हें उनपर पछताना पडेगा। मुझे उन्हे नष्ट नही करना है जो उनकी निन्दा करके उन्हें मै खत्म कर दूं। मैं तो मानता हू कि लोक प्रतिनिधियो की बनी धारा-सभाये अपना काम अच्छी तरह कर सकती हैं। और चूंकि हमारा देश दुनिया मे सबसे अधिक गरीब और दरिद्र है, जितना कम खर्च से हम काम ले सके हमें लेना चाहिए।"

अगर रियासते भी भारतीय सघ शासन मे शामिल हो जावेगी तो उन्हे भी अखिल-भारत-पचायत मे अपने प्रतिनिधि भेजने के वही अधिकार होंगे जो प्रान्तो की जनता को होगे। ये प्रतिनिधि वहा की लोक-प्रतिनिधियों की सभाओं के सभापति होंगे न कि नरेशो द्वारा नामजद काठ की गुडिया।

अखिल-भारत-पंचायत का कार्य काल भी तीन वर्ष का होगा।

कार्य

अधिक से अधिक प्रातीय और स्थानीय स्वतंत्रता के सिद्धान्त के आधार पर अखिल-भारत-पचायत का कार्य क्षेत्र-बहुत मर्यादित होगा। उसके काम नीचे लिखे अनुसार होगे :

(अ) बाहरी आक्रमणो से देश की रक्षा करना।

(आ) जरूरत के अवसरों पर काम दे इसलिए राष्ट्रीय पुलिस दलों को रखना।

(इ) प्रान्तों द्वारा बनाई गई आर्थिक उन्नति की योजनाओ का समन्वय करना।

(ई) अखिल भारतीय महत्त्व रखनेवाले महत्त्वपूर्ण उद्योगों का सचालन करना।

(उ) यातायात तथा सन्देश भेजने के अखिल भारतीय साधनों की व्यवस्था और सचालन करना।

(ऊ) चलनी सिक्के, चुङ्गी और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का नियमन करना।

(ए) अखिल भारतीय महत्त्व और उपयोग वाली बड़ी-बड़ी शिक्षा-संस्थाओं का संचालन करना तथा सर्वत्र शिक्षा का समुचित दर्जा कायम रखने के सम्बन्ध में प्रान्तों का मार्ग दर्शन करना।

(ऐ) राष्ट्र की वैदेशिक नीति का निर्धारण करना।

शेष अधिकार (रेसेड्यू आफ पॉवर्स) केन्द्रीय सरकार को नहीं बल्कि संघ में शामिल होनेवाली इकाइयों के ही आधीन रहेंगे।

शासन

अखिल-भारत-पंचायत कानून बनानेवाली मुख्य धारा-सभा होगी। उसके सिपुर्द जो काम हैं, उनके सम्बन्ध मे वह कानून बनाएगी। अखिल-भारत पंचायत का अध्यक्ष राष्ट्र का अध्यक्ष होगा। संघ-पंचायत अपने विभिन्न महकमो के संचालन के लिए मन्त्रियों को नियुक्ति करेगी। ये मन्त्री अखिल-भारत-पंचायत के सदस्यों मे से नहीं होंगे। इस प्रकार कानून बनाने और शासन के काम बिलकुल अलग-अलग होंगे।

केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल या शासन सभा पूरी तरह से केन्द्रीय धारा सभा के प्रति जिम्मेवार होगी। मन्त्रियों का कार्यकाल तीन वर्ष का होगा। परन्तु अयोग्यता और कर्तव्यभ्रष्टता को छोड़ और किसी कारण से अखिल-भारत-पंचायत साधारणतया मन्त्रियों को अलग नहीं कर सकेगी। अगर कोई मन्त्री गम्भीर दुराचरण का अपराधी पाया जायगा तो उसे अपने साधारण कार्यकाल की समाप्ति के पहिले भी तुरन्त अलग हटा दिया जायगा।

मन्त्रियों की नियुक्ति मे जाति, सम्प्रदाय या पार्टियों का खयाल नहीं रक्खा जायगा। अच्छे-से-अच्छे और बुद्धिमान आदमियों की ही नियुक्ति होगी। चूंकि स्थानीय मामलों में बहुत बडी मात्रा में पहले ही स्वायत्तता प्रदान कर दी गई है, इसलिए धारा सभा में भी कोई विधिवत् और कठोर राजनैतिक दलबन्दी नहीं होगी। यों केन्द्रीय शासन समिति के बनाने में तमाम जातियों का और खास तौर पर अल्पसंख्यक जातियों का

पूरा ध्यान रक्खा जायगा, परन्तु स्वतन्त्र भारत के भावी विधान में जातीय प्रतिनिधित्व के अनुपात की दोष-पूर्ण पद्धति को कोई स्थान नहीं होगा। वास्तव में पूर्णतया विकसित अहिंसक अवस्था को पहुंच जाने पर भारत में एक भी ऐसी अल्पसंख्यक जाति नहीं रहेगी जिसे यह शिकायत होगी कि उसकी तरफ पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है और इस कारण जो अपने आपको सारे राष्ट्र से अलग मानती होगी।

संघ के अंग

अखिल भारत पचायत एक संघ होगा। इसमें प्रान्त और रियासतें अपनी इच्छा से शरीक होंगे। और उन्हें अपने प्रदेशों के स्थानीय प्रश्नों में अधिक-से-अधिक स्वतन्त्रता होगी। चूंकि भौगोलिक और [illegible] दृष्टियों से भारत एक और अखण्ड है, अपेक्षा यह है कि तमाम प्रान्त और रियासतें भी राष्ट्र की भलाई के लिए स्वेच्छा से इसमें [illegible] जायगी। सम्मिलित राष्ट्रीय जीवन के निर्माण और [illegible] आवश्यक सद्भावपूर्ण वातावरण बनाने के लिए [illegible]

पञ्चायते करेंगी। शासन विभाग से वे स्वतन्त्र हो। और जब तक अपने कर्तव्य का ठीक तरह पालन करते रहेंगे उन्हे कोई हटा न सकेगा।

सर्वोपरि न्यायालय

भारत का सर्वोपरि न्यायालय देश में न्याय-विभाग की सबसे ऊची सत्ता होगी। उसके काम ये होंगे—

(अ) हाईकोर्ट के निर्णय पर की गई अपीलों की सुनवाई करना।

(आ) सघ के अगभूत प्रादेशिक घटको के बीच उपस्थित होने वाले झगड़ो मे विधान सम्बन्धी प्रश्नो का निर्णय देना।

(इ) विधान मे वर्णित मौलिक अधिकारो के पालन पर जोर देकर अल्प सख्यको—अगर तब कोई रह जाय तो—के हितो की धर्म-भावना पूर्वक रक्षा करना।

इस न्यायालय के न्यायाधीशो की नियुक्ति अखिल-भारत पञ्चायत द्वारा होगी। अत्यन्त चरित्रवान और सर्वोत्तम गुण एव योग्यतावाले तथा जाति, धर्म एव पार्टियो के राजनैतिक पक्षापक्ष से जिन्होने अपने आपको ऊपर रक्खा होगा, ऐसे ही व्यक्तियो की नियुक्ति इस स्थान पर होगी।

: ११ :

चुनावों की पद्धति

मताधिकार

मताधिकार और मतदाता की पात्रताओं का प्रश्न तो केवल ग्राम-पञ्चायतों के चुनावों मे ही खड़ा होगा। गावों मे चुनाव बालिग मताधिकार की पद्धति पर होंगे। उसमें जात-पात, धर्म, लिंग, विश्वास, सामाजिक दर्जा, माली हालत या पढ़ाई वगैरा की कोई क़ैद नहीं होगी। वोटर का साक्षर होना भी अनिवार्य नही होगा। गाधीजी का तो कथन है कि—

"मैं तो इस कल्पना को भी बरदाश्त नही कर सकता कि एक आदमी, जिसके पास धन है, उसे तो वोट देने का अधिकार हो, पर जो चरित्रवान है; किन्तु जिसके पास धन नहीं या जो साक्षर नही, उसे न हो। इसी प्रकार जो ईमानदारी से काम करके, रोज़ पसीना बहाकर अपनी रोजी कमाता है, उसे भी वोट देने का अधिकार इसलिए न हो कि वह गरीब है। मैं साक्षरता का भी इतना कायल नहीं कि वोटर को पढ़ने-लिखने और हिसाब का ज्ञान हो। हिन्दुस्तानियों को कम-से-कम इतना ज्ञान तो ज़रूर हो, पर मैं यह भी जानता हूँ कि अगर हमे तब तक ठहरने के लिए कहा जाय तो सदिया बीत जावेगी जिसके लिए मै हरगिज तैयार नही।"[1]

विशेष पात्रताये

पचायतों के पदाधिकारियों के लिए यद्यपि कोई खास कड़ी मर्यादाये नहीं होंगी, फिर भी उम्मीदवारों के पक्ष मे वोट देते समय वोटर नीचे लिखी योग्यताओं का खास तौर पर ध्यान रक्खेगे—

(अ) साक्षरता और सामान्य शिक्षा
(आ) नागरिक जीवन का परिपक्व अनुभव
(इ) आर्थिक स्वतन्त्रता (जिससे रिश्वतखोरी का भय न हो)
(ई) ग्रामीण जनता की निस्वार्थ और सच्ची सेवा।

इस मौके पर उम्मीदवारों के पक्ष में किसी भी प्रकार का प्रचार एक निश्चित बुराई और अयोग्यता का सबूत माना जाना चाहिए। पंचायत

[1] राउन्डटेबल कान्फरेन्स में दिया गया भाषण।

नहीं जानता था कि बर्तन मे क्या है। उसे इस बर्तन के अन्दर के लिफाफों में से एक को उठाने के लिए कहा जाता। वह ऐसा ही करता। तब इस लिफाफे के अन्दर की पर्चियों को दूसरे खाली बरतन मे रखकर खूब हिलाया जाता। बच्चे से फिर इनमें से एक पर्ची उठाने के लिए कहा जाता। लडका एक पर्ची निकालता और उस मध्यस्थ ब्राह्मण को देता। वह ब्राह्मण इस पर्ची को अपनी खुली हथेली पर ग्रहण करता। फिर उसमे लिखे नाम को पढता। इसके बाद अन्तर्गृह मे बैठे सभी ब्राह्मण पर्ची मे लिखा नाम जोर से पढ कर सुनाते। इसी प्रकार प्रत्येक वार्ड के प्रतिनिधि का चुनाव होता।"

यद्यपि इस प्रकार पर्ची डालकर चुनाव करने की पद्धति पूर्णतया जनतन्त्री तो नही कही जा सकती, परन्तु गाव के सामाजिक जीवन मे इससे सद्भाव और शुद्धता की रक्षा तो जरूर होती थी। आधुनिक चुनावों मे जो कटुता और द्वेष भाव पैदा हो जाते हैं उनका तो यहा सर्वथा अभाव होता था। यह प्राचीन पद्धति कुछ फेरफारो के साथ पुनः शुरू की जा सकती है। उदाहरणार्थ पहले खुले या लिखित वोटो द्वारा कुछ निश्चित

अगर इनमें से कुछ भी न हो तो यह सिद्ध होगा कि भारत के विषय में अंगरेज सरकार की नीयत साफ नहीं है।

सर जार्ज शुस्टर ने लिखा है—"संघ योजना हमारे सामने यह आशा भरी सम्भावना पेश करती है कि रियासतों के शासन में काफी उदारता आ जायगी तथा वह समयानुकूल भी बन जायगा। यही नहीं, सारे देश के राजनैतिक ढांचे में एक प्रकार की निश्चित स्थिरता भी आ जावेगी। इसके अलावा भारतवर्ष के इन दो हिस्सों के सामाजिक और आर्थिक जीवन परस्पर इस प्रकार घुले-मिले हैं और अंगरेजी इलाका भी रियासती इलाकों से इस कदर ताने-बाने की तरह गुंथा हुआ है कि अगर केन्द्र में किसी ऐसी सरकार की स्थापना हो गई कि जिसमें रियासतें शरीक नहीं हैं तो अक्सर संघर्ष होगा ही।... अन्त में खुद नरेशों के हित की दृष्टि से देखा जाय तो भी यह बलपूर्वक कहना होगा कि नरेशों को अपने राज्यों का शासन ऐसे आधारों पर कायम करना चाहिए जिनमें उदारता हो और जिनकी तरफ किसी को अंगुली उठाने की भी गुंजाइश न मिले।"[1]

ईमानदारी से अगर इस उद्धरण का अर्थ लगाया जाय तो यह नरेशों को एक प्रकार का निमन्त्रण है कि वे समय को पहचानें और अंगरेजों की संगीनों की छाया में जनता पर डिक्टेटरों की भांति निरंकुश सत्ता चलाने के बजाय जनता का साथ दें। जब तक जनता अहिंसा के पुण्य-धर्म को मानती है, नरेशों को जनता से किसी प्रकार के अशुभ की आशंका नहीं करनी चाहिए। अगर वे चाहते हों कि उनके साथ न्याय हो तो वे अपने ही सद्गुणों का भरोसा करें। वे खुद अच्छे आदमी बनें। पर हां, वे यह भी निश्चित रूप से जान लें कि उनकी वर्तमान निरंकुशता हमेशा नहीं चल सकेगी। गांधीजी के शब्दों में यह "दोहरी गुलामी" है।

१ 'इण्डिया एण्ड डेमोक्रेसी'—जार्ज शुस्टर एंड जे विन्ट पृ० ३६५-३६६।

: १३ :

राष्ट्र-रक्षा

सभी जानते हैं कि अहिंसा के सम्बन्ध मे गाधीजी के विचार कितने निश्चित हैं और वे उन पर कितने दृढ हैं। वे मानते हैं कि हिंसा की अपेक्षा अहिसा अनत गुनी श्रेष्ठ है। वे तो चाहेगे कि स्वतन्त्र भारत बाहरी आक्रमणों से अपनी रक्षा करने के लिए भी सशस्त्र फौजें न रक्खे। वे चाहते हैं कि हिन्दुस्तान अपने अन्दर अहिंसा के अनुशासन का विकास करे और बाहरी आक्रमणो का बहादुरी के साथ तथा सफलता पूर्वक मुकाबला करे। उस कठिन समय में जब कि ब्रिटेन एकदम लाचार हो गया था और निराश होकर इस भय में बैठा था कि अभी हिटलर आकर उसे निगलने जा रहा है, गाधीजी ने अपनी अकेली, किन्तु शक्तिशाली आवाज हिंसक विजय के खिलाफ उठाई और साहस पूर्वक ब्रिटेन को सलाह दी कि वह जर्मन आक्रमणों का निःशस्त्र प्रतिकार करे।

"मै चाहता हू कि आप अपने इन हथियारो का त्याग कर दें। आपकी और मनुष्य जाति की वे रक्षा करने मे असमर्थ हैं। इसके बजाय आप हेर हिटलर और सिन्योर मुसोलिनी को निमन्त्रण देकर बुलावे और आप जिन प्रदेशों को अपने मानते हैं उनमें से जितनों को वे चाहें उन्हें लेने दें। उन्हें अपने सुन्दर द्वीप पर भी, जहा कितनी ही सुन्दर इमारतें हैं, भले ही अधिकार कर लेने दे। हा, आप अपनी आत्मा और दिल को छोड़ उन्हें ये सब दे दें।"

अपने समस्त इतिहास में ब्रिटेन जिस समय एक अत्यन्त नाजुक समय में से गुजर रहा था गाधीजी को छोड़ और कौन 'टू एवरी ब्रिटेन' (हरेक अगरेज से) शीर्षक ऐसी सस्मरणीय और अमर अपील जारी कर सकता था! उन्होने इस बात की भी परवाह नहीं की कि कहीं दुनिया मुझे हसेगी तो नहीं और अपने दिल के गहरे और सच्चे भाव प्रकट कर दिये। शस्त्रों की दो-दो विजयों की निःसारता इन दो खून, पसीना और आसुओं की

नदियां बहाने वाले महाभयंकर महायुद्धों ने स्पष्ट रूप से प्रकट कर दी। नेपोलियन को पराजित करने का अपूर्व सम्मान पानेवाले ड्यूक ऑव वेलिंगटन ने कहा था "पराजय को छोड़ विजय से अधिक भयंकर चीज मैंने आज तक नहीं देखी।" ड्यूक की इन अत्यन्त अर्थपूर्ण भविष्यवाणी को संसार भुला देगा तो उसे बुरी तरह पछताना होगा। वह अटलांटिक चार्टर भी अब तो मर चुका, पर उसमें भी यह मंजूर किया गया था कि "संसार के तमाम राष्ट्रों को वास्तविकता की दृष्टि से या आध्यात्मिकता की दृष्टि से भी पशुबल के त्याग पर ही आना होगा।" और अब तो वैज्ञानिक प्रगति रहस्यमय परमाणु बम तक जा पहुंची है। वह हमें मजबूर करेगी कि अब हम हिंसा के मार्ग को छोड़ कर बहादुरों की अहिंसा का विकास करें। निर्भय और सबल अहिंसा परमाणु बम से भी भयंकर अस्त्र का मुकाबला कर सकती है, क्योंकि अहिंसक योद्धा तो पराजय को नहीं जानता। जो राष्ट्र सचमुच अहिंसक है वह उन्मत्त आक्रमणकर्ता के सामने झुक कर, उसकी मातहती और वफादारी मंजूर करने के बजाय हंसते हुए मर-मिटना पसन्द करेगा।

परंतु गांधीजी स्वप्नदर्शी नहीं हैं। वे अत्यन्त उच्च-कोटि के यथार्थ-वादी और व्यावहारिक आदर्शवादी हैं। अपने देश की मर्यादाओं को वे खूब अच्छी तरह जानते हैं। अगर भारत केवल अहिंसक फौज को ही रखना मंजूर करले तो उन्हें सचमुच बड़ा सुख होगा, परंतु वे जानते हैं कि यह आदर्श तत्काल साध्य होने लायक नहीं है। "हिन्दुस्तान विवश होकर अपनी बेइज्जती होती देखता रहे इसके बजाय तो मैं यह पसन्द करूंगा कि वह शस्त्र धारण करके अपने सम्मान की रक्षा करे।"[1] वे कहते हैं—

'आह! आज मेरे स्वराज्य में सिपाहियों के लिए स्थान है। स्वराज्य में हम बुद्धिमान, अनुशासन-बद्ध और शिक्षित पुलिस दल भी रक्खेंगे। और वह भीतरी शांति की रक्षा करेगा और देश को बाहरी आक्रमणों से भी

१ यंग इंडिया, ११-८-१९२०

बचावेगा, अगर तब तक मैंने या और किसी ने इनमें से किसी का भी प्रतिकार करने का कोई दूसरा अच्छा रास्ता नहीं ढूँढ निकाला।"[1]

गांधीजी की कल्पना में भारत की रक्षा के लिए एक राष्ट्रीय पुलिस का दल काफी होगा। वह आज की फौज और पुलिस दोनों से भिन्न होगा।

"उसमें अहिंसा के मानने वाले सिपाही होंगे। वे जनता के मालिक नहीं सेवक होंगे। उनके पास किसी क़िस्म के हथियार भी जरूर होंगे, पर इनका उपयोग यदि करना ही पड़ा तो बहुत कचित् ही किया जायगा। असल में पुलिस के आदमी सुधारक होंगे।"[2]

राष्ट्रीय पुलिस पर अ० भा० पचायत का पूरा नियन्त्रण होगा। वह एक सेनापति की नियुक्ति करेगी। वही राष्ट्र रक्षा के महकमे का सचालन करनेवाला मन्त्री भी होगा। राष्ट्रीय पुलिस दल में केवल भारतीय ही होंगे, यद्यपि समय-समय पर विदेशियों से आवश्यक विशेष सलाह भी ली जा सकेगी।

इस अध्याय को समाप्त करने से पहले भावी विधान में राष्ट्र-रक्षा के प्रश्न का तुलनात्मक दृष्टि से क्या महत्त्व है, इस पर विचार कर लेना जरूरी है। यद्यपि इस युद्धरत ससार मे राष्ट्र रक्षा का प्रश्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है तथापि गांधीजी के कल्पनागत स्वतन्त्र भारत में हमें आक्रमणों से इतना नहीं डरना चाहिए। इसके कारण ये हैं:—

(अ) भौगोलिक और सामाजिक दृष्टि से भारतवर्ष की स्थति ऐसी है कि उस पर कभी कोई एक राष्ट्र बगैर ससारव्यापी महायुद्ध को निमन्त्रण दिये आक्रमण ही नहीं कर सकता।

(आ) भारतवर्ष अपना भीतरी आर्थिक सगठन पूर्णतया स्वावलम्बन के आधार पर कायम करेगा। दूसरे देशों पर वह कभी अपना साम्राज्य कायम करना नहीं चाहेगा और न उसे विदेशी बाजारों

२ हरिजन—१-८-१९४० १ 'यंग इण्डिया' ७-५-१९२५

को अपने कब्जे मे करने की दौड़ में शरीक होना है। इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय-संघर्ष की संभावनाएं काफी घट जाती हैं।

(इ) चूंकि स्वावलम्बी ग्राम-पद्धति वाले भारत में वैदेशिक व्यापार के लिए बहुत कम अवकाश होगा, विदेशी सत्ताओं को इस देश पर आक्रमण करने के लिए प्रलोभन भी बहुत कम होंगे।

इसके अलावा अगर गांधीजी के प्रेरक नेतृत्व मे भारत कहीं अहिंसक साधनों से आजाद होगया तो वह संसार के युद्धमान राष्ट्रों के बीच में निश्चित रूप से सद्भाव और शान्ति की जबरदस्त शक्तियों को संचालित कर देगा। जैसा कि गांधीजी कहा करते हैं, भारत की स्वतन्त्रता और स्वावलम्बन का सीधा अर्थ होगा अनाक्रमण और अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव।

अच्छे साधन भी उन्हें मिल गये, जो जान मे या अनजान में उनके हाथों में, ठीक उनकी योजना के अनुसार खेलते रहते हैं।

हिन्दुस्तान की साम्प्रदायिक समस्या का अगर ध्यान से अध्ययन किया जाय तो मालूम होगा कि अ गरेज लोग हिन्दुस्तान की राजनीति में साम्प्रदायिकता का जहर बिल्कुल पद्धति-पूर्वक फैलाते रहे हैं। उन्नीसवीं सदी के अ त तक यह सरकार मुसलमानो का बहुत शक करती रही है, क्योंकि उसने उनसे यहा की राजसत्ता छीनी थी। परन्तु बीसवीं सदी के प्रारम्भ मे उसने जान लिया कि हिंदू-मुसलिम एकता उसके साम्राज्य के लिए कितनी खतरनाक चीज साबित होगी। इसलिए इसके बाद से विदेशी राज्यकर्ताओं ने खूब सोच-समझ कर।योजना पूर्वक इस देश में साम्प्रदायिक वैमनस्य के बीजो का बोना शुरू कर दिया। सन् १६०६ के अक्तूबर की पहली तारीख हमारे देश के इतिहास मे वह अशुभ दिन था जब कि हिज हाइनेस आगा खा के नेतृत्व में एक शिष्ट मण्डल तत्कालीन वाइसराय लार्ड मिण्टो की सेवा में उपस्थित हुआ। हिज हाइनेस आगा खा ने उनको एक मानपत्र समर्पित किया और शिष्ट-मंडल ने वाइसराय से विनती की कि वे मुसलमानों को स्थानीय, प्रान्तीय और केन्द्रीय चुनावों में एक स्वतन्त्र जाति मान लें। स्वर्गीय मौलाना मोहम्मद अली ने इस शिष्ट मण्डल को कठपुतली का खेल कहकर बहुत कडे शब्दों में निन्दा की थी! और अब तो यह बात दस्तावेजों से सिद्ध होगई कि इस शिष्ट मण्डल के पीछे कुछ अ गरेज अफसरों की प्रेरणा थी। शायद उसका मसविदा मि० आर्चबाल्ड ने तैयार किया था जो उस समय अलीगढ कालेज के प्रिन्सिपल थे। शिष्ट-मण्डल को लार्ड मिण्टो ने जवाब दिया--"मैं आपसे पूरी तरह सहमत हू।" और उन्होंने इस अभागे देश मे पृथक् निर्वाचन का प्रारम्भ कर दिया। लार्ड मोर्ले चाहते थे कि अल्प सख्यक जातियों के लिए कुछ जगहे जरूर सुरक्षित रख दी जाय, पर चुनाव तो सम्मिलित ही हों। उन्होने लार्ड मिण्टो को लिखा :—

"मुसलमानों के सम्बन्ध मे हमारे बीच जो मतभेद है, उसे मै नही बढाऊ गा। सिर्फ मै एकबार आदर पूर्वक आपको यह दिखा देना चाहता हू कि मुसलमानों को भड़काने वाली सबसे पहली चीज शुरू में दिया गया आपका भाषण ही था।"[1]

रैम्से मैकडोनल्ड ने अपनी किताब "अवेकनिंग इन इण्डिया" में भी अपनी यह स्पष्ट राय जाहिर की है कि हिंदुस्तान मे जातीयता के आधार पर चुनाव जारी करने की पद्धति की जिम्मेवारी अगरेज अफसरो पर है। भारतवर्ष की राष्ट्रीय एकता में विघ्न खड़ा करने वाली यह घटना कैसे घटाई गई इसपर नीचे लिखे उद्धरण से काफी प्रकाश पड़ता है। लेडी मिंटो को किसी ऊ चे अगरेज अफसर ने एक पत्र लिखा था, उसमें से उन्होंने अपनी डायरी मे यह नोट किया है। पत्र मे लिखा है—

"मैं आप को एक लाइन मे यह भी लिख दू कि आज एक बहुत बड़ी राजनीतिज्ञता की बात हो गई है, जिसका असर हिन्दुस्तान के इतिहास पर कई वर्षों तक रहेगा। सवा छः करोड़ की सारी आबादी को राजद्रोही विरोध से खींचकर अलग करनेवाला यह एक जबरदस्त काम हुआ है।"[2]

इस आरोप को खुद सरकारी कागजो मे भी मजूर किया गया है। विधान-सशोधन के लिए भेजे गये सायमन कमीशन की 'इण्डियन सेंट्रल कमिटी' ने अपनी रिपोर्ट मे लिखा है कि "उस समय पृथक् निर्वाचन के लिए खुद मुसलमानों की तरफ से कोई माग नहीं थी। उन्होंने तो यह तब पेश की जब एक अंगरेज अफसर ने, जिसका नाम प्रसिद्ध है, उन्हें उकसाया।" (पृ ११७)

इस प्रकार हिन्दुओं और मुसलमानो के बीच जो खाई पैदा की गई, उसे पाटने के लिए सच्चे दिल से उठाया गया पहला सफल कदम सन्

१ वाइकाउन्ट मोर्ले – रिकलेक्शन्स जिल्द दूसरी पृ० ३८५।

२ "न्यू अप्रोच टु दी काम्यूनल प्राब्लेम" में उद्धृत—डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी—पृ० ४

१९१६ का लखनऊ पैक्ट था। परन्तु सरकार ने इसे अपनी पुरानी तरकीब से अर्थात् इस पैक्ट में मुसलमानों को जो कुछ दिया गया था उससे ज्यादह देकर इस पैक्ट को तुरन्त असफल कर दिया। सन् १९१९ के माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों में साम्प्रदायिक चुनावों के प्रति बड़े बड़े शब्दों में नापसन्दगी जाहिर करते हुए भी, उसी जहरीली पद्धति को कायम रक्खा गया जो कि बदकिस्मती से आज तक जारी है। पृथक निर्वाचन और धारासभाओं में जातियों के लिए खास संख्या में जगहें सुरक्षित रखने तथा मुसलमानों के लिए विशेष रूप से उत्तरोत्तर अधिक जगहें (वेटेज) बढ़ाते रहने की नीति का ही स्वाभाविक और तर्कसम्मत परिणाम यह पाकिस्तान की मांग है। इसलिए पाकिस्तान का पिता इकबाल, रहमत अली या जिन्ना नहीं, बल्कि लार्ड मिण्टो है।'[1]

इन पृष्ठों में पाकिस्तान के दावे का परीक्षण करने की जरूरत नहीं है। इस विषय पर काफी साहित्य भरा पड़ा है।[2] जिज्ञासु पाठक उसे पढ़ लें। यहां पर तो इतना ही कह देना काफी है कि पाकिस्तान का यह नारा एक-दम अव्यावहारिक है। न उसमें बुद्धि है, न भलाई। हिन्दू और मुसलमान अलग-अलग राष्ट्र हैं, यह बात ही किसी की बुद्धि को नहीं पट सकती।

"हिन्दुस्तान के टुकड़े-टुकड़े हों यह असह्य है। हिन्दू धर्म और इस्लाम की संस्कृति और सिद्धान्त परस्पर विरोधी हैं इस कल्पना के खिलाफ मेरी सारी आत्मा बगावत करती है। इस विचार के खिलाफ मुझे

१ सन् १९३२ में केम्ब्रिज के रहमतअली नामक एक पंजाबी ग्रेज्युएट ने पाकिस्तान शब्द का आविष्कार किया। यह पंजाब, अफगानिस्तान, काश्मीर, सिन्ध और बलूचिस्तान इन पांच प्रदेशों के नामों से अक्षर लेकर बनाया गया है।

२ इस विषय पर पाठक नीचे लिखी किताबें खास तौर पर पढ़ें—

१ कम्यूनल ट्रायंगल—अशोक मेहता और अच्युत पटवर्धन।

२ इंडिया डिवाइडेड—राजेन्द्रप्रसाद।

३ पाकिस्तान ऑर पार्टिशन ऑफ इंडिया—डॉ० अम्बेडकर।

बगावत करनी पड़ेगी कि करोड़ों हिन्दुस्तानी, जो अभी तक हिन्दू थे, इस्लाम को स्वीकार करते ही अलग राष्ट्र बन गये।"

फिर पाकिस्तान से अल्पसंख्यकों का सवाल भी तो हल नहीं होता। इससे तो वह उलटा और अधिक उलझता है। इसके मान लेने के बाद पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के करोड़ों हिन्दू और मुसलमान फिर अपने-अपने अधिकारों की रक्षा की आवाज उठायेंगे। हिन्दुस्तान के टुकड़े-टुकड़े करने पर देश-रक्षा की दृष्टि से राष्ट्र बड़ा कमजोर हो जायगा। आर्थिक हानि भी जबरदस्त होगी, और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भी पाकिस्तान एक बहुत छोटी शक्ति रह जायगा। प्रो० कूपलैण्ड लिखते हैं

हिन्दुस्तान को एक या अधिक टुकड़ों में बांटने से व्यवहारतः राष्ट्रीय दृष्टि से उसकी आत्म-हत्या ही हो जायगी। इसलिए जहां गांधीजी किसी भी प्रदेश के बांटने या अलग होने के हक को मंजूर कर लेंगे, वहां उनकी अहिंसा उन्हें अपने राष्ट्र की चीर-फाड़ का प्रतिकार करने में अपनी सारी नैतिक और आध्यात्मिक ताकत लगा देने की, बल्कि इस प्रयत्न में अपने-आपको खत्म तक कर देने की, प्रेरणा करेगी।

यह खुशी की बात है कि अभी मुसलमानों में भी सद्भाव की कमी नहीं है। पर अंगरेज सरकार हमारे छोटे से-छोटे भेदभाव को तिल का ताड़ बना कर आग में घी डालने पर तुली हुई है। अगर विदेशी शासक ईमानदारी से सत्ता सौंपने के लिए तैयार हो जावें तो यह साम्प्रदायिक मसला तो रातभर के अन्दर-अन्दर हल हो सकता है। अंगरेज भले ही अपनी जबान से कहते रहें कि हम हिन्दुस्तान के टुकड़े-टुकड़े नहीं करना चाहते। परन्तु मुझे भय है कि वे अन्त में पाकिस्तान से मिलता-जुलता कोई फैसला हमारे सर पर लादे बग़ैर नहीं रहेंगे। अतः उन्हें हमें अब साफ कह देना चाहिए कि वे अपनी फूट फैलाकर शासन करने की कुटिल नीति को छोड़ दें। पृथक निर्वाचन की बुराई उन्हींने शुरू की। अब न्याय और ईमानदारी के नाम पर उन्हें खुद ही अपनी नीति बदल देनी चाहिए। वे यह न समझ लें कि राजनीति में केवल वे ही होशियार हैं। अगर कहीं सालभर के लिए भी हिन्दुस्तान का ब्रिटेन पर शासन हो जाय तो इंग्लैंड, स्कॉटलैंड और वेल्स को बड़ी आसानी से पृथक-पृथक राष्ट्र सिद्ध किया जा सकता है और संसार को यह बताया जा सकता है कि वे अलग-अलग होने की पुकार कर रहे हैं, बल्कि उसके लिए लड़ भी रहे हैं।

अंतर्राष्ट्रीय प्रथाओं के अनुसार भारत के भावी विधान में नीचे लिखे मुद्दों पर जोर देकर अल्पसंख्यकों का प्रश्न भी हल किया जा सकता है—

(अ) मौलिक अधिकारों के अनुसार तमाम जातियों की संस्कृति, भाषा,

लिपि, शिक्षा और धर्म के आचरण और पालन तथा सामाजिक रीति-रिवाज और व्यक्तिगत नियमों की पूरी रक्षा की जायगी।

(आ) प्रत्येक प्रदेश को अपनी सीमा के अन्दर आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक विषयों में पूरी स्वतन्त्रता होगी। और जब हमारा ग्रामीण समाज स्वावलम्बी तथा स्वय-शासित बन जायगा, तब वैधानिक दृष्टि से अल्पसंख्यकों की समस्या पूरी तरह हल हो चुकी होगी।

(इ) हमारे विधान का आधार सम्मिलित निर्वाचन पद्धति होगी। उसमें अल्पसंख्यक जातियों के लिए एक निश्चित सख्या में जगहें सुरक्षित रहेंगी और इसके अलावा भी अन्य जगहों के लिए खडे रहने की स्वतन्त्रता उन्हें होगी। गाधीवादी विधान में अल्पसख्यकों के लिए इस प्रकार जगहें सुरक्षित रखने की भी जरूरत नहीं रहेगी। सक्रमण-काल के लिए भले ही यह व्यवस्था अस्थायी तौर पर उसमें रक्खी जा सकती है।

(ई) मताधिकार तमाम बालिग स्त्री पुरुषों के लिए होगा। इसमें किसी प्रकार की कैद या भेदभाव नहीं रक्खा जायगा।

(उ) सरकारी नौकरी मे उम्मीदवारों की नियुक्तियां निष्पक्ष कमीशनों द्वारा की जावेंगी। शासन के काम की उत्तमता का ध्यान रखते हुए उसमें सब जातियों को उचित अनुपात में स्थान मिलेगा।

अल्पसख्यकों के अधिकारों और प्रतिनिधित्व की तफसीलें बनाने

नहीं है। जातियों के नेता और प्रतिनिधि-अगुआ इस सद्भाव को बढ़ाने के लिए बहुत कुछ कर सकते हैं।

"अपनी वाणी और प्रत्यक्ष कार्यों द्वारा, संयत भाषा में मौलिक अधिकारों की उचित समय पर हिमायत करके, व्यवस्थित आचार द्वारा, प्रसंगोचित दृढता द्वारा, अपने कार्य की न्याय्यता तथा युक्तिसगतता बताकर, सर्व-सामान्य प्रवृत्तियों या हलचलों को तथा सगठनों को हर तरह का प्रोत्साहन देकर और फूट तथा अलगाव की भावना को कठोरता के साथ दबाकर भारत की अल्पसख्यकों की समस्या को, जिस रूप में आज हम उसे देखते हैं, आज और हमेशा के लिए, सर्वत्र और सब तरह से सुलझाया जा सकता है।[1]

हमारे देश के हिन्दुओं और मुसलमानों के सामने सबसे बुनियादी समस्या तो है देश मे फैली हुई भयकर कगाली। इस सर्वसामान्य आर्थिक कष्ट के मुकाबले मे साम्प्रदायिक प्रश्न तो बिलकुल तुच्छ, नगण्य-सा हो जाता है। स्वराज्य के आते ही राष्ट्र की सरकार को सबसे पहिले जनता की रहन-सहन को ऊंचा उठाने के प्रश्न पर अपना सारा ध्यान केन्द्रित कर देना होगा। तब अल्पसख्यकों की समस्या सुबह के कुहरे की तरह बात-की-बात मे अदृश्य हो जावेगी। गाधीजी कहते हैं—

"जातीय प्रश्न का हल हमारे स्वराज्य शासन के विधान की बुनियाद नहीं, कलश होगा। क्योंकि हमारे आपसी भेदभाव अगर विदेशी सत्ता के कारण पैदा नहीं हुए तो दृढ जरूर हुए हैं। मुझे इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि जातीय भेदभाव का यह तैरता हुआ बरफ का पहाड़ स्वतन्त्रता के सूर्य की गरमी मे पिघल कर नष्ट हो जायगा।"[2]

---

१ ग्हिदर माइनारिटीज—एम्० एन० दलाल—पृ० १६३

२—"दि केस फार स्वराज्य"—पृ १०३

: १५ :

वैदेशिक नीति

पं० जवाहरलालजी नेहरू की व्यापक दृष्टि की बदौलत हिन्दुस्तान ने अंतर्राष्ट्रीय जगत में एक निश्चित और काफी उदार वैदेशिक नीति का विकास कर लिया है। समस्त संसार मे हमारी राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) शायद सबसे पहली राजनैतिक संस्था थी जिसने फासिस्ट शक्तियों की खुशामद करनेवाली नीति की, जिसकी परिणति म्यूनिच का शर्मनाक इकरारनामा था, निन्दा की थी। कांग्रेस ने चीन पर जापान के आक्रमण के खिलाफ भी अपनी आवाज उठाई थी। स्पेन के भीतरी विद्रोह और बाहरी आक्रमण के समय उसकी सरकार की बहादुराना लड़ाई में भी कांग्रेस ने साथ दिया था। गत महायुद्ध मे भी कांग्रेस मित्र राष्ट्रों के पक्ष मे अपनी पूरी ताकत लगा देने को तैयार थी अगर उसे तुरन्त पूरी स्वतन्त्रता दे दी जाती। और आज इण्डोनेशिया के राष्ट्रीय आन्दोलन को दबाने के लिए हिन्दुस्तानी सिपाहियो का जो बुरी तरह उपयोग किया जा रहा है, हिन्दुस्तानी नेताओ ने इसकी कड़ी-से-कड़ी निंदा की है। इससे अपने पड़ोसियो के प्रति भी इस देश का रुख प्रकट है। फिर भी भारत के भावी विधान मे उसकी वैदेशिक नीति को साफ-साफ शब्दो मे प्रकट कर देना उचित होगा। इसके खास-खास मुद्दे ये होंगे:—

(अ) सम्पूर्ण समानता के आधार पर हिन्दुस्तान की जनता अपने पड़ोसियो और दुनिया के तमाम अन्य राष्ट्रों के साथ शांति और मित्रतापूर्वक रहना चाहती है।

हिन्दुस्तान अपने पड़ोसी राष्ट्रो के प्रदेशों पर बुरी नजर नहीं रखता। वह दूसरो की स्वतन्त्रता का आदर करेगा और अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव और मेल कायम करने की कोशिश करेगा।

(आ) व्यापार और व्यवसाय द्वारा हिन्दुस्तान दूसरे देशो का आर्थिक

शोषण नहीं करेगा, और न वह दूसरों को अपना शोषण करने देगा। पारस्परिक लाभ और समृद्धि के आधार पर ही वह दूसरे देशों के साथ व्यापारिक सम्बंध जोड़ेगा।

(इ) हिन्दुस्तान का विश्वास है कि स्वतन्त्र राष्ट्रों का संसारव्यापी सघ स्थापित होने पर ही भविष्य में शाति और व्यवस्थित प्रगति की आशा हो सकती है। ऐसे जागतिक सघ की स्थापना होने पर ही ससार में तमाम देशों का निःशस्त्रीकरण हो सकेगा। राष्ट्रो की खानगी सेनाए, नौसेना दल और हवाई सेना की तब जरूरत न होगी। तब ससार की सरक्षक सेना आक्रमणो का रोकेगी और ससार मे शाति की रक्षा करेगी। स्वतन्त्र भारत ऐसे जागतिक संघ में प्रसन्नता पूर्वक शरीक होगा, और समानता के आधार पर अतर्राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने में सहयोग देगा। (८ अगस्त १९४२ के प्रस्ताव का अंश)

(ई) शाति, स्वतन्त्रता और जनतन्त्र की स्थापना के लिए यत्नशील ससार की तमाम राष्ट्रीय, जनतन्त्री और समाजवादी शक्तियों को हिन्दुस्तान का पूर्ण समर्थन प्राप्त होगा और आक्रमण-कर्त्ता के खिलाफ बनाई गई हर अतर्राष्ट्रीय आर्थिक योजना मे शरीक होने के लिए वह हमेशा तैयार रहेगा।

(उ) सामुहिक सुरक्षा के साधनों के सगठन और सचालन में यद्यपि भारत सहयोग देने के लिए हमेशा तैयार रहेगा, तथापि किसी भी राष्ट्र की स्वतन्त्रता के अपहरण या दबाने मे किसीको भी उसका सहयोग कभी प्राप्त नही हो सकेगा।

(ऊ) जाति, वर्ण, या आर्थिक और सास्कृतिक पिछड़ेपन आदि के किसी भी प्रकार के भेदभाव का खयाल न करते हुए हिन्दुस्तान तमाम छोटे-बड़े राष्ट्रो की पूर्ण स्वतन्त्रता का हिमायती है। किसी भी हालत मे एक देश को किसी दूसरे देश पर राज करने का अधिकार नही।

: १९ :

अर्थ और कर

हिन्दुस्तान की वर्तमान अर्थ और कर पद्धति अत्यन्त अन्याय-युक्त और बेहूदा है। इसलिए उसे एकदम बदल कर उसकी नये सिरे से रचना करनी होगी। भारत के भावी विधान में नीचे लिखे महत्वपूर्ण मुद्दों का समावेश होना चाहिए।

(अ) राष्ट्रीय आमद-खर्च में उचित प्रकार से विकेन्द्रीकरण कर दिया जाय, जिससे प्रत्येक स्थान सच्चे अर्थों में स्वशासित बन जाए। गावों में एकत्रित जमीन के लगान का कम-से-कम आधा हिस्सा ग्राम-पचायतों को दे दिया जाय।

(१) गावों के दूसरे जरूरी खर्चों का प्रबन्ध ग्राम-पंचायत [illegible] व्यक्तिगत दान, पचायत शुल्क, जुर्माने और चराई आदि [illegible] कर इकट्ठा करके करेगी। ग्रामीणों द्वारा नकद के रूप में कर देने के बजाय श्रम के रूप में कर लेने की पद्धति को प्रोत्साहन दिया जायगा।

(ए) एक निश्चित रकम से ऊपर मिलने वाली खेती की आय पर श्रेणीबद्ध कर लगा दिया जायगा।

(ऐ) एक निश्चित रकम से ऊपर की जायदाद की विरासत पर एक क्रम-बद्ध कर लगा दिया जायगा।

(ओ) आयकर प्रांतीय आमद का साधन होगा।

(औ) नमक पर कोई कर नहीं होगा। वह हवा के जैसा सुलभ होगा।

(अं) चूंकि स्वतन्त्र भारत में शराब और मादक द्रव्यों की पूरी बंदिश होगी, इसलिए मादक द्रव्यों के कर से कोई आबकारी आमद नहीं होगी।

(अः) नकद के बजाय उपज के रूप में, खास तौर पर देहातों में कर लेना अधिक पसन्द किया जायगा।

प्रांतीय और अखिल-भारत-पंचायत के आमद का मुख्य साधन सार्वजनिक उपयोग के साधनों और मुख्य उद्योगों के संचालन से होने वाला मुनाफा होगा।

: १७ :

राष्ट्रीय समृद्धि

स्वराज्य शासन-विधान में खानगी जायदाद को उसके महज़ खानगी होने की वजह से ही मिटाया नहीं जायगा। समाज की वर्तमान लोभजन्य बुराइयों से बचने के लिए इसके क्षेत्र को सीमित और मर्यादित जरूर बना दिया जायगा। आज नीचे लिखे प्रकार की सम्पत्ति पर खानगी पूंजीपतियों का स्वामित्व है। स्वतन्त्र भारत में वह राष्ट्र की सम्पत्ति बन जायगी:—

(अ) तमाम जमीन पर राष्ट्र का स्वामित्व होगा। जमींदारी पद्धति और जमीन पर खानगी मिल्कियत की पद्धति का अन्त होगा। खुद खेती

करने वाले किसानों को सरकार की तरफ से लम्बी मियाद पर काश्त के लिए जमीने किराये पर दी जायंगी।

(आ) तमाम मुख्य-मुख्य उद्योगो पर राष्ट्र का स्वामित्व होगा। खानगी उद्योगपतियो को उनको संचालन का काम कमीशन के आधार पर दिया जा सकता है; पर वे बुनियादी उद्योगो के स्वामी नही हो सकेंगे और राष्ट्रीय साधन-सामग्री से मुनाफा नही कमा सकेंगे।

(इ) खाने, नदिया, जंगलात, सड़के, रेले, हवाई जहाज, डाक और तार, समुद्री जहाज़ और यातायात के अन्य साधन राष्ट्र की सम्पत्ति होगे।

(ई) उपर्युक्त जायदादो मे से जो खानगी व्यक्तियों के हाथों मे होगी उनको राष्ट्रीय सरकार अपने हाथों मे ले लेगी। जहा आवश्यक होगा, अधिकार की उचित जॉच करने पर, पहले के स्वामियो को इनका उचित मुआवजा भी दे दिया जायगा।

: १८ :

शिक्षा

हिन्दुस्तान की वर्तमान शिक्षा-पद्धति हमारे राष्ट्रीय जीवन की सबसे बड़ी जरूरत को पूरा करने मे नाकामयाब रही है। हमारे समाज के जीवन और आर्थिक स्थिति से उसका कोई सम्पर्क तक नही, और न वह हमारे सामने कोई सृजनात्मक और प्रेरक आदर्श उपस्थित करती है इसलिए हमे स्वराज्य-विधान मे शिक्षा-पद्धति में भी दूरगामी सुधार करने होगे। नीचे लिखे मुद्दे उनमें से खास-खास होंगे.—

(अ) बुनियादी शिक्षा निःशुल्क और अनिवार्य होगी। [illegible] उम्र तक के तमाम लड़को और लड़कियो को दी जायेगी। शिक्षा का आधार कताई, बुनाई या खेती जैसी कोई [illegible] होगी। हिन्दुस्तान जैसे गरीब देश मे ऐसी शिक्षा से [illegible] के लाभ होगे—

जानना लाभदायक होगा कि सोवियट रूस के सुधार-गृह कैसे होते हैं। बोल्शेवो के सुधार-गृह का हाल जरा सुनिये—

मास्को से थोड़ी ही दूरी पर बोल्शेवो पर कैदियों का एक सुधार घर है। खुद जी. पी, यू की देख-भाल में वह चलाया जा रहा है। वह आज जैसा है, तथा जिस तेजी से वह तरक्की कर रहा है उसे देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि संसार में वह एक सबसे उत्तम सुधार-घर बन जायगा। वह एक लम्बी-चौड़ी बस्ती है, जिसमें कोई एक हजार मनुष्य रहते हैं। किसी करोड़पति की सुन्दर जमीन पर, जिसकी सम्पत्ति छीन ली गई है, वह बसाया गया है। वहा खेती भी है और कारखाना भी है। निवासियों की आजादी पर रोक लगाने के लिए वहा न तो दीवारें हैं और न दरवाजों पर ताले वगैरा लगाये जाते हैं। निवासी जब और जहाँ चाहें आ-जा सकते हैं। राष्ट्र के अनेक प्रजातन्त्रों की अदालतों से जिन्हें छोटी-मोटी चोरी, बेकचलनी, हिंसात्मक डाका वगैरा के अपराध मे दो या अधिक बार सजा मिल चुकी हो, ऐसे व्यक्तियों मे से कुछ को सुधार के लिए चुन लिया जाता है, और उन्हें केवल मजदूरी के काम पर लगा दिया जाता है। उन्हें जो मजदूरी मिलती है, उसे वे जिस तरह चाहे बस्ती में दूकानों पर अपने मन की चीजे खरीद कर खर्च कर सकते हैं। वे सिगार पी सकते हैं, बातचीत कर सकते है, संगीत सुन सकते हैं या थियेटर भी जा सकते हैं; या अन्य किसी भी प्रकार से अपनी फुरसत के समय का उपयोग कर सकते हैं। वास्तव में उन्हें यह बताया जाता है कि गुनहगार या भिखमंगे की अपेक्षा नियमित रूप से काम करते हुए नियमित मनोरंजन और पूर्ण मात्रा में व्यावहारिक आजादी का जीवन कहीं अधिक अच्छा और ऊँचा होता है। कुछ समय के बाद वे अपनी स्त्री को भी वहा रहने के लिए ला सकते हैं। इस प्रकार धीरे-धीरे एक परिवार वहा अपना घर बसा कर रहने लग जाता है। अनेकों को इस बस्ती और यहाँ के जीवन से इतना प्रेम हो जाता है कि इसे छोड़कर कहीं भी जाना वे पसन्द नहीं करते। अनेकों

को यही मन-चाही औरतें या औरतों को मर्द भी मिल जाते हैं, और इस तरह यह बस्ती क्रमशः बढ़ती जाती है। आज वहां ३००० सजायाफ्ता और स्वतन्त्र आदमी रहते हैं। पर ऐसी अकेली बोल्शेवो की बस्ती ही नहीं। लगभग दस ऐसी और बस्तियां सोवियट रूस में हैं।[1]

स्वतन्त्र भारत में गंभीर से गंभीर अपराध पर भी फांसी की सजा नहीं होगी।

दुर्बुद्ध बच्चों के लिए राष्ट्र खास तौर के सुधार-गृहों का संचालन करेगा, जिससे अपराधों का जड़ से इलाज हो जाय।

फौजदारी कानून को बहुत छोटा और सरल बना दिया जावेगा। कानून जितने पेचीदा होते हैं अपराध और अपराधी की मनोवृत्ति उतनी ही बढ़ती है।

: २० :

सरकारी नौकरियां

(अ) प्रान्तीय या अखिल भारतीय महकमों में जो लोग काम कर रहे हैं, स्वतन्त्र भारत उनमें से जिनको चाहेगा रक्खेगा, जिनको चाहेगा अलग कर देगा।

(आ) जिनको नौकरी से अलग किया जावेगा, स्वतन्त्र भारत उन्हें वाजिब पेन्शन या निर्वाह खर्च दे सकता है।

(इ) जिनको वह नौकरी में कायम रक्खेगा उनकी पेन्शन या सेवा-निवृत्ति के लिए पहली वास्तविक सेवाओं का ध्यान रक्खा जायगा।

(ई) ग्राम, तहसील, तथा जिलों के लिए कर्मचारी क्रमशः ग्राम, तहसील एवं जिला पंचायतों द्वारा खास-खास निश्चित नियमों के अनुसार नियुक्त किये जावेंगे।

१ सोवियट कम्यूनिज्म—ए न्यू सिविलिजेशन—सिडने एण्ड बीट्रिस वेब—जिल्द दूसरी, पृ० ५८८-८८

(उ) प्रान्तीय और अखिल भारतीय महकमों के लिए कर्मचारियों की भर्ती इन पचायतों द्वारा नियुक्त पब्लिक सर्विस कमीशन करेंगे। इन कमीशनों के सदस्य अत्यंत असाधारण योग्यता तथा चरित्रशील होंगे। उनका कार्य तीन वर्ष का होगा।

(ऊ) कर्मचारियों की नियुक्ति तरक्की, अनुशासन, सेवा निवृत्ति, और पेन्शन वगैरा के नियम पब्लिक सर्विस कमीशन ही बनावेंगे।

(ए) सरकारी नौकरियों में योग्यता, कार्यशक्ति, चरित्र, और राष्ट्र-सेवा की भावना का ध्यान रखकर ही भरती की जायगी। अल्पसंख्यक और पिछड़ी हुई जातियों के साथ पूर्ण न्याय हो इस बात का खास तौर पर ध्यान रक्खा जायगा। परन्तु स्वतन्त्र भारत के विधान को साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की कैदो से दूषित नहीं किया जायगा।

(ऐ) रिश्वत, अनैतिकता और धोखा, वेईमानी, व्यक्तिगत और साम्प्रदायिकपक्षपात के दोषी नौकरों के साथ किसी प्रकार भी रियायत नहीं की जायगी। सार्वजनिक नैतिकता को कायम रखने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है।

(ओ) कर्मचारियों को दफ्तर के काम को जमाने, शासन-संचालन तथा सार्वजनिक व्यवहार के नियमों की शिक्षा देने के लिए खास तौर पर ट्रेनिंग देनेवाली संस्थाएं खोली जावेंगी।

(औ) सरकारी नौकरी के लिए उम्मीदवारों का चुनाव करते समय उन नौजवानों को पहले मौका दिया जायगा, जिन्होंने हिन्दुस्तान की आजादी की लड़ाई में भाग लिया होगा।

: २१ :

विविध

झण्डा

तिरंगा झण्डा, जिसके बीच में चरखा हो, स्वतन्त्र भारत का सरकारी झण्डा होगा।

नाम वगैरा

विधान निर्मात्री सभा द्वारा नियुक्त खास समिति द्वारा स्वतन्त्र भारत के शासन-विधान में नाम हिन्दुस्तानी में रखे जायेंगे।

विधान मे संशोधन

विधान की धाराओ वगैरा मे रद्दोबदल करने का अधिकार अखिल भारत पंचायत को होगा। ये रद्दोबदल अखिल भारत पचायत तथा प्रांतीय पंचायतो मे पचहत्तर प्रतिशत बहुमति से मंजूर होंगे। अगर ये रद्दोबदल किसी खास प्रात के सम्बन्ध मे होंगे तो केवल उसी प्रात की मजूरी के लिए भेजे जावेंगे।

विधान की मौलिक अधिकार वाली धाराये सर्वोपरि न्यायालय की मजूरी से ही सशोधन हो सकेगी।

: २२ :

उहसंहार

पिछले अध्यायों में वर्णित विधान को ऊपर-ऊपर से पढ़ने पर पाठकों को शायद यह प्रतीत हो कि यह भारत के वर्तमान भारी भरकम वेतन वाले अफसरों से भरे शासन-तन्त्र से बहुत भिन्न नहीं है। परन्तु जिन्होंने इसे ध्यान से पढ़ा है, वे देखेंगे कि विधान के सारे तत्व और स्पष्ट परिवर्तन हैं। इसमें ऐसी शासन-पद्धति की रूप-रेखा पेश की गई है, जिसका सबसे नीचे का हिस्सा खूब लम्बा-चौड़ा और फैला हुआ है।

यह आधार हमारी असख्य ग्राम-पचायतें हैं। ऊपर की पचायतें ठीक-ठीक सलाह देने, विशेषज्ञों का मार्ग-दर्शन और जानकारी देने का काम करेंगी और समस्त ग्राम-पचायतों की प्रवृत्तियों का समन्वय करती रहेंगी, जिससे पचायतों की शासन, और सेवा-शक्ति बढ़े और अधिक अच्छी हो। परन्तु गांधीजी के कल्पना-गत स्वराज्य में नीचे के आधार-भूत संगठन राष्ट्र की नीति का निर्धारण करेंगे, न कि ऊपर के संगठन। सच तो यह है कि सारा ढांचा उलट दिया जायगा। सारे शासन का सचालन ग्रामों के हाथों में चला जायगा।

इसके जवाब में यह कहा जा सकता है कि हिन्दुस्तान के गांव तो आज बहुत बुरी हालत में हैं। ग्रामवासियों में तुच्छ ईर्ष्या द्वेष हैं, झगड़े हैं, दलबन्दियां हैं। वे अपढ़ हैं। उनमें नागरिकता के भावों की जागृति अभी नहीं आई है। इसलिए उनमें बहुत अधिक विश्वास करके ग्राम-पचायतों के हाथों में बहुत अधिक अधिकार देने में बहुत बड़ा खतरा है। परन्तु यह दलील गलत है। असल में विश्वास करने से विश्वास बढ़ता है। मानव स्वभाव का यह एक जबरदस्त सिद्धांत है और इसे उपयुक्त दलील में भुलाया जा रहा है। अंगरेज लोग हमें आज तक यही कहते हैं कि हिन्दुस्तानी स्वराज्य संचलन की योग्यता नहीं रखते और हमने भी उन्हें हमेशा कहा है सुशासन स्वशासन की बराबरी नहीं कर सकता. क्या हर्ज है अगर हम गलतियां—बहुत बड़ी भूलें भी कर जावें। गलतियां करते करते ही तो हम सीख सकते हैं। इसलिए ग्राम-पचायतों के हाथों में बहुत बड़े हिस्से में राजनैतिक सत्ता देने में हमें डरना नहीं चाहिए। हां, यह हम भले ही धीरे-धीरे करें। पर हमारा उद्देश्य साफ साफ रूप में यही हो। इसमें किसी प्रकार का भ्रम न रहे। मुझे तो इसमें तिल-मात्र भी सन्देह नहीं कि इस स्वदेशी विधान के मातहत हमारे गांव अपना पूरा विश्वास कर सकेंगे और एकबार फिर सच्ची और चिर स्थायी जन-सत्ता पद्धति के जगमगाते नमूने बन जावेंगे।
